अमरीका के प्रख्यात दार्शनिक,
लेखक एवं विचारक
डॉ० जॉन एच० मानस

चिर-यौवन

लेखक
डॉ० जॉन एच० मानस
पी-एच० डी०, डी० पिस० इत्यादि

अनुवादक
डॉ० नरेन्द्र चौधरी, डी० लिट्०

सहायक
प्रीतम गिरि गोस्वामी

भारती एसोसिएशन प्रकाशन
गाज़ियाबाद उत्तर प्रदेश

विषय-सूची

शरीर-चिकित्सा-विज्ञान

समस्त प्रकृति का संचालन कुछ अटल नियमों द्वारा होता है। ये नियम उस मधुर सम्बन्ध एवं पारस्परिक अवलम्ब पर आधारित हैं जो विश्व के पदार्थों तथा प्राणिवर्ग और ब्रह्माण्ड के एकमात्र कारण-भूत दैवी ज्ञान के मध्य विद्यमान है।

ईश्वरीय द्वैतवाद जीव और प्रकृति अथवा विश्व-जीवन-शक्ति और द्रव्य के रूप में प्रकट होता है। खनिज-सृष्टि, उद्भिज-सृष्टि तथा प्राणि-सृष्टि, इन तीनों सृष्टियों के अन्तर्गत अवस्थित अनन्त शरीरों की उत्पत्ति जीव और प्रकृति के परस्पर मिलन से होती है। प्राणी की स्वाभाविक अवस्था का नाम ही स्वास्थ्य है। प्रत्येक पौधा, पशु तथा मनुष्य अर्थात् प्रत्येक जीवधारी जन्म के समय अपनी स्वाभाविक अवस्था में होता है। विकास के सिद्धान्त से तात्पर्य यही है कि विश्व के सभी जीवधारी अपने जीवनकाल में निरन्तर उन्नति करते हुए पूर्णानन्द की प्राप्ति करें। इस आवश्यक उद्देश्य की पूर्ति तभी हो सकती है जब वे पूर्णतया स्वस्थ हों।

प्रत्येक शरीर की रचना एक विशेष अदृश्य आकार के अनुरूप होती है। अतएव प्रत्येक शरीर को, चाहे वह पौधा हो, पशु हो अथवा मनुष्य

हो, अपने विकास एवं स्वास्थ्य के लिए ऐसे भोजन की अपेक्षा है जो उस विशिष्ट प्रकार के आकार के लिए आवश्यक है, जिसके अनुरूप उसकी उत्पत्ति हुई है।

जिस प्रकार पेट्रोल से चलने वाला इंजिन मिट्टी के तेल अथवा अन्य किसी मोटे तेल से नहीं चल सकता, उसी प्रकार एक मनुष्य भी, जिसका स्वाभाविक भोजन सब्जियाँ, फल तथा गिरियाँ हैं, मांस-भक्षी बनकर न तो अपने शरीर के विभिन्न अवयवों की क्रियाओं का उचित संतुलन बनाये रख सकता है और न ही पूर्णतया स्वस्थ रह सकता है। नियम यह है कि जिन चारों सृष्टियों का हम पीछे वर्णन कर आए हैं उनमें से प्रत्येक सृष्टि का उचित आहार उससे निम्नतर कोटि की सृष्टि है और सामान्यतया इसी नियम का सर्वत्र प्रचलन भी है। जब इस मूल नियम की अवहेलना करके कोई पौधा या प्राणी अपनी ही कोटि की सृष्टि का भक्षण आरम्भ कर देता है तो उस पौधे या प्राणी की अवस्था में एक अस्वाभाविक परिवर्तन हो जाता है। उसकी प्रकृति, लक्षण एवं गुण सर्वथा बदल जाते हैं। ऐसे पौधों अथवा प्राणियों की स्वाभाविक अवस्था विकृत होकर अपनी कोटि के अन्य पौधों अथवा प्राणियों से भिन्न प्रकार की हो जाती है। इस अवैध आचार को, जो इस अस्वाभाविक और अप्राकृतिक परिवर्तन का कारण है, स्वजाति-भक्षण नाम से पुकारते हैं। यह आचार वनस्पति-सृष्टि में पाये जाने वाले परजीवी पौधों की उत्पत्ति का कारण है। इस प्रकार के पौधे प्राकृतिक नियमों की अवहेलना करने के कारण विषैले हो जाते हैं और वनस्पति-सृष्टि का सफाया करने लगते हैं। ठीक यही बात प्राणि-सृष्टि पर भी लागू होती है और प्राणिवर्ग में मांसाहारी प्रवृत्ति के विकास का यही कारण है। इसी प्रकार अनेक प्राणी अपनी ही कोटि की सृष्टि के भक्षक एवं संहारक बन जाते हैं। अधिकांश मानव-जाति में, भोजन से सम्बन्धित उपरोक्त प्राकृतिक नियम की अनभिज्ञता तथा मानसिक दुर्बलता के कारण, स्वजाति-भक्षण की

प्रवृत्ति पाई जाती है। वस्तुतः मनुष्य द्वारा इस मूल प्राकृतिक नियम के उल्लघन का बडा ही भयकर परिणाम होता है।

यह अनेक बार सिद्ध हो चुका है कि मानव-समाज में जड पकड़ने वाली अधिकांश बुराइयाँ, जैसे तम्बाकू का सेवन, मदिरापान, अनियंत्रित भावनाएँ, विचार तथा कार्य, सभी इस मूल प्राकृतिक नियम के उल्लघन के कारण उत्पन्न होती हैं। अनेक युग बीत जाने पर भी मानव जैसा था वैसा ही रहा। ऐसा प्रतीत होता है कि इतने समय तक कष्ट, बीमारी एवं अल्पायु-मृत्यु से पीड़ित होते रहने पर भी उसने कुछ नहीं सीखा है और उसे अपने अज्ञान का पर्याप्त मूल्य चुकाना पड़ा है। संसार के प्रत्येक देश और प्रत्येक काल में विभिन्न वर्तमान मानव-जातियों में तथा समस्त सभ्यताओं में इस अज्ञान-जनित एव अस्वाभाविक कुप्रवृत्ति की रोक-थाम के लिए किसी विषहर औषधि की आवश्यकता प्रतीत हुई और यही चिकित्सा-प्रणाली की उत्पत्ति का कारण है।

चिकित्सा की विभिन्न प्रणालियाँ

प्राचीन काल में चिकित्सकों का बड़ा सम्मान होता था। वे रोगियों की चिकित्सा विविध मन्त्रों, विलक्षण जादू-टोनों, ऐन्द्रजालिक क्रियाओं तथा गुणकारक जड़ी-बूटियों द्वारा करते थे। इस अपरिष्कृत ढंग से भी कभी-कभी रोगी आरोग्य हो जाते थे। परन्तु इस प्रकार की चिकित्सा से सामान्यतया उनका रोग बढ़ जाता था और अन्तत वे सुखदायिनी एव रोगनाशिनी मृत्यु की गोद में सुख की नींद सो जाते थे।

चीन, क्रीट, मिस्र, ईरान तथा भारत की सभ्य और प्राचीन जातियों में तथा अमेरिका की अजटैक्स एव माया आदि जातियों में रोगों की चिकित्सा एक वैज्ञानिक कला के रूप में विकसित हुई। ग्रीस में एस्कूलेपियस और हिप्पोक्रेट्स इस वैज्ञानिक कला के जन्मदाता थे।

यह कला प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली पर आधारित थी, जिसे भौतिक चिकित्सा (Physiotherapy) के नाम से सम्बोधित करते थे। यह महत्त्वपूर्ण शब्द दो ग्रीक शब्दो–'Physis' और 'Therapeia'–से मिलकर बना है। 'Physis' का अर्थ है प्रकृति और 'Therapeia' का अर्थ है चिकित्सा। 'Therapeia' का क्रियारूप 'Therapeuo' है, जिसका अर्थ बडा ही विचित्र है और जिसका ज्ञान सामान्य चिकित्सकों को अब भी बहुत कम है। जनसाधारण तो इस शब्द के उस अर्थ से लगभग अनभिज्ञ ही हैं। इसके अनेक अर्थ हैं, जैसे सेवा करना, देवताओं की उपासना करना, पवित्र आचरण, घाव भरना आदि। इस प्रकार शारीरिक चिकित्सा के अनेक भेद हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि चिकित्सा विज्ञान में रोगो का दीर्घ निरीक्षण एव रोगी की भली प्रकार परिचर्या का विशेष महत्त्व था। चिकित्सक रोगी के रक्त को प्राकृतिक प्रणाली द्वारा शुद्ध करता था और धीरे-धीरे विविध उपायों द्वारा रोगी को निरोग कर देता था। वह रोगी को ठीक करने के लिए धैर्यपूर्वक रोगी की चिकित्सा प्राकृतिक प्रणाली द्वारा करता था। इस कार्य में वह अनावश्यक जल्दबाजी नही करता था। चिकित्सा का यह प्रकार आधुनिक चिकित्सा-प्रणाली से सर्वथा भिन्न है, जिसमें रोगो का शीघ्रता से दमन करने के लिए अप्राकृतिक साधनो का सहारा लिया जाता है, जोकि प्राकृतिक नियमो के सर्वथा विरुद्ध है। प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली मे रोग का नाश धीरे-धीरे किन्तु समूल हो जाता है। 'भैषजसंहिता' के अनुसार औषधि की रोगो पर उत्तेजक, उद्दीपक तथा अवरोधक, यह तीन प्रकार की प्रक्रिया होती है।

एस्कुलेपियस के प्राचीन मन्दिरो के पुजारी-चिकित्सक चिकित्सा-प्रणाली के अनेक साधनो का उपयोग करते थे, जैसे पथ्य चिकित्सा, रक्त-शोधन चिकित्सा, वर्ण चिकित्सा, संगीत चिकित्सा, मन:-शारीरिक औषधि चिकित्सा, चुम्बकीय चिकित्सा और धार्मिक चिकित्सा-प्रणाली आदि। इसके अतिरिक्त नृत्य और नाटकों द्वारा भी वे अपने रोगियों

की चिकित्सा किया करते थे। चिकित्सा की उपरोक्त प्रणालियाँ प्राकृतिक चिकित्सा-प्रणाली के अन्तर्गत आती हैं।

प्राचीन विद्वानो के अनुसार प्रत्येक मनुष्य के सात शरीर होते हैं। प्रथम चार भौतिक हैं; यथा स्थूल शरीर, जो नेत्रो द्वारा देखा जा सकता है, इसके अतिरिक्त ईथरीय (दृश्) शरीर, भावना-शरीर और मन-शरीर, जो इन साधारण नेत्रो द्वारा नही देखे जा सकते। इन चार प्रकार के शरीरों के अतिरिक्त प्रत्येक मनुष्य के तीन शरीर और होते हैं, जिनका सम्बन्ध उसकी अविनाशी आत्मा से होता है।

उन शरीरो को क्रमशः हम ज्ञान-शरीर (पैथागोरियन समाज का 'Nous'), इच्छा-शरीर (क्रिश्चियन चर्च का 'Logos') और कारण-शरीर कहते हैं।

जब मनुष्य के चारो भौतिक शरीर पूर्ण विकसित अवस्था में होते हैं और आत्मा के मार्ग-दर्शन में अपना कार्य सुचारु रूप से करते रहते हैं तो मनुष्य पूर्ण स्वस्थ रहता है। परन्तु जब उपरोक्त चारो शरीरो में से कोई एक शरीर प्राकृतिक नियमों का उल्लघन करता है तो स्थूल शरीर की अवस्था अप्राकृतिक एव अस्वाभाविक हो जाती है और शरीर [illegible]ग्रस्त हो जाता है, क्योकि स्थूल होने के कारण चारो शरीरो में [illegible] शरीर ऐसा है जिसके द्वारा अन्य शरीरो में स्थित रोगो के लक्षण [illegible] सुगमता से दृष्टिगोचर हो जाते हैं।

अतएव एक कुशल चिकित्सक को मनुष्य के इन चारो भौतिक [illegible]रीरों का ज्ञान होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त उसे इन शरीरो [illegible] गुण-स्वभाव का, इनकी कार्यप्रणाली का तथा इनकी चिकित्सा का [illegible] पता होना चाहिए।

[illegible]नुष्य के चार भौतिक शरीर

(१) स्थूल शरीर—जब रोग का कारण स्थूल शरीर में हो तो [illegible]मी शरीर के अनुरूप उपाय करना चाहिए; यथा जल-चिकित्सा, रोग

के कारणरूप हानिकारक तत्त्वों का शरीर से निष्कासन, पथ्य-चिकित्सा, वर्ण-चिकित्सा व्यायाम, प्राणायाम आदि और यदि अनिवार्य हो तो शल्य-चिकित्सा भी करनी चाहिए।

(२) ईथरीय शरीर—इसी शरीर के माध्यम से मानव-शरीर में शक्ति का परिभ्रमण होता है। रोग का कारण जब इस शरीर में होता है, तो सम्पूर्ण शरीर की आन्तरिक शुद्धि, श्वास-क्रिया का सन्तुलन, धूप-स्नान, जड़ी-बूटियाँ, विटामिन, उचित आहार आदि द्वारा शरीर में नई शक्ति का संचार होता है और इस प्रकार ये सब आरोग्य-लाभ में सहायक होते हैं।

(३) भावना-शरीर—जब भावनाओं में विकृति के कारण मनुष्य रोगी होता है तो इस अदृश्य भावना-शरीर का ही उपचार होना अपेक्षित है। प्राचीन ग्रीस में यूरीपाइड्स (Euripides), ऐसचाइलस (Aeschylus) और सोफोक्लिस (Sophocles) के दु:खान्त तथा अरिस्टोफेन्स के सुखान्त नाटक बहुधा दिखाये जाते थे और सभी नागरिक इन नाटकों को देखना अपना नागरिक कर्तव्य मानते थे। निर्धनों को नागरिक प्रशासन की ओर से नि:शुल्क टिकिट दिये जाते थे। इन नाटकों को न देखने का किसी नागरिक के लिए भी कोई कारण नहीं हो सकता था। ये नाटक खुले स्थानों पर होते थे, जहाँ बैठकर नागरिकों को स्वच्छ वायु तथा सूर्य के प्रकाश में बैठने का अवसर मिलता था। इस स्वस्थ वातावरण के प्रभाव से उनके शरीर और आत्मा बलवान बनते थे।

प्राचीनकालीन ग्रीस के वे नाटक-गृह भावना-शरीरों से सम्बन्धित रोगों की चिकित्सा के साधन थे। एपीडोरस-स्थित ऐस्कुलेपियस के मन्दिर में 'थोलस' नामक सुन्दर गोलाकार भवन का उपयोग भी आरोग्यशाला के रूप में किया जाता था। स्वास्थ्य की अभिलाषा रखने वालों के लिए यह स्थान उसी प्रकार पवित्र और प्रिय है जैसे मुसलमानों के लिए मक्का। कलात्मक खम्भों तथा संगमरमर पर नक्काशी के काम

से सुसज्जित यह सुन्दर भवन और इसमें रखी हुई ग्रीस के महान् कलाकारों की कलाकृतियाँ, तैल चित्र आदि रोगियों के भावना-शरीरों को आरोग्य प्रदान करने का माध्यम थे। इन कलाकृतियों में प्रयुक्त विविध रंगों का भी प्राचीन ग्रीक लोग भावना सम्बन्धी चिकित्सा के लिए प्रयोग करते थे।

मन-शरीर—मनुष्य के उपरोक्त चारों भौतिक शरीरों में मन-शरीर सूक्ष्मतम है। आत्मा, जो ज्ञानस्वरूप है और पैथागोरियन समाज के लोग जिसे 'नाउस' के नाम से सम्बोधित करते हैं, वह इस मन शरीर के माध्यम से ही मानसिक चित्र बनाता है, जिन्हें हम विचार कहते हैं। जिस प्रकार चित्रकार रंग एवं तूलिका की सहायता से कनवास (कपड़ा विशेष) पर अपनी भावनाओं को अंकित कर देता है, उसी प्रकार आत्मा भी मनरूपी सामग्री की सहायता से मानसिक चित्र बनाता है और फिर इन स्वनिर्मित मानस-चित्रों का अवलोकन करके इनमें अपनी रुचि के अनुसार आवश्यक परिवर्तन किया करता है। इन्हीं मानसिक चित्रों को हम विचार कहते हैं। मनुष्य में कल्पना तथा रचनात्मकता की शक्ति जितनी ही विकसित होगी, उतने ही स्पष्ट और सजीव उसके विचार होंगे।

अधिकांश रोगों की जड़ मन शरीर में ही होती है। आधुनिक विज्ञान इस प्रकार के रोगों को मानसिक रोगों की संज्ञा देता है। दार्शनिक दृष्टि से यह गलत है। वस्तुतः मनुष्य की आत्मा समस्त भौतिक बन्धनों से रहित है। रोग तथा इसी प्रकार की दूसरी व्याधियों से ग्रसित नहीं होता। वास्तविक स्थिति यह है कि जब मनुष्य का मन-शरीर व्याधिग्रस्त होता है तो उसका सामान्य प्रकम्पन तथा उसकी स्वाभाविक क्रियाएँ नष्ट हो जाती हैं। ऐसी अवस्था में आत्मा उस विकृत मन शरीर के माध्यम से अपना कार्य सुचारु रूप से नहीं कर सकता। मन शरीर की यह विकृत अवस्था ही स्थूल शरीर द्वारा रोग के रूप में प्रकट होती है। यदि एक शक्तिशाली विद्युत प्रतिरोधक

को समझकर समाज-कल्याण के लिए इसका जनसाधारण में प्रचार करना चाहिए।

गन्दी बस्तियों को समाप्त करके उनके स्थान पर या तो सुन्दर एवं सुन्दर भवनों का निर्माण किया जाय, अथवा रंग-बिरंगे फूलों तथा वृक्षों से युक्त नयनाभिराम उद्यान लगाए जायें। किसी को ऊटपटांग और भद्दे मकान बनाने की अनुमति न दी जाय और जो मकान अव्यवस्थित ढंग से बने हों और देखने में भद्दे लगते हों उनकी मरम्मत कराई जाय तथा बनावट में आवश्यक परिवर्तन करके उन्हें सुन्दर बनाया जाय।

रेडियो स्टेशनों, छविगृहों, प्रेस, पुस्तकों तथा पत्रिकाओं द्वारा अश्लील गानों और बेहूदे ड्रामों आदि के प्रसार को रोकना चाहिए, क्योंकि इनका नागरिकों के मन पर बड़ा दुष्प्रभाव पड़ता है। इन्हीं के कारण आजकल हमारे समाज में मानसिक रोगों, बाल-अपराधों तथा अन्य स्नायु सम्बन्धी व्याधियों की वृद्धि हो रही है। धार्मिक त्यौहारों के अवसर पर सुन्दर गानों तथा कलात्मक नाटकों से युक्त ड्रामों के प्रचलन को प्रोत्साहन देना चाहिए। इससे लोगों के दैनिक धन्धों तथा विविध चिन्ताओं में फँसे मनों की व्यग्रता भी कुछ क्षणों के लिए तो दूर हो ही जाती है और इस प्रकार उनकी दबी हुई भावनाओं एवं अविकसित विचारों को विकास का अवसर मिलता है। प्राचीन ग्रीस-वासियों ने राष्ट्रीय कानूनों की सहायता से इस प्रकार के सुन्दर नियमों को अपने दैनिक जीवन का अंग बनाकर अपने देश की सभ्यता और संस्कृति को उसकी चरम सीमा पर पहुँचा दिया था और अपने सुखी एवं स्वस्थ परिवारों तथा अपने सामाजिक जीवन को आदर्श रूप में प्रस्तुत किया था। इस सत्य को तथा इस प्राकृतिक नियम को मैं शारीरिक चिकित्सा के क्षेत्र में कार्य करने वाले समस्त वैज्ञानिकों के विचार के लिए प्रस्तुत करता हूँ। इन नियमों का पालन वे निःशंक होकर और बिना अधिक सोचे-विचारे कर सकते हैं और यदि मनःशरीर सम्बन्धी नियमों का भी उन्हें कुछ ज्ञान है तो वे वैज्ञानिक, जिन्हें हम आधुनिक

ऐस्कुलेपियाड्स यह मानते हैं, वस्तुतः लोगों की चिकित्सा करने में समर्थ होंगे और मनुष्यों को अस्पतालों तथा पागलखानों में प्रविष्ट होने से बचा सकेंगे। हमारे आधुनिक अस्पताल पागल रोगियों से पटे पड़े हैं, यद्यपि हमें अपनी वैज्ञानिक प्रगति का बड़ा अभिमान है और हम अपने मनःचिकित्सकों की योग्यता का दिन-रात ढोल पीटते हैं। स्थूल शरीरों, मनःशरीरों तथा भावना-शरीरों की चिकित्सा के लिए आधुनिक अस्पतालों द्वारा अपनाये गए अधिकांश साधन गलत हैं, क्योंकि चिकित्सा के क्षेत्र में इनका भौतिक प्रचार अन्वेषण और प्रगति के परिणामस्वरूप हुआ है। आजकल के वैज्ञानिकों की दृष्टि में मनुष्य केवल एक मशीन अथवा रासायनिक प्रयोगशाला है। इस प्रकार उनकी दृष्टि मनुष्य के स्थूल शरीर तक ही सीमित रहती है और स्थूल शरीर से अधिक महत्वपूर्ण अन्य भौतिक शरीरों से वे सर्वथा अनभिज्ञ हैं, और न ही उन्हें इन भौतिक शरीरों के नियन्त्रक, आत्मा के स्वास्थ्य-परीक्षण सम्बन्धी व्यापार का ही कुछ ज्ञान है। चिकित्सा की समस्त प्रणालियों, जैसे ऐलोपैथी, होम्योपैथी, नेचरोपैथी, अस्थि-चिकित्सा, वर्ण-चिकित्सा, संगीत-चिकित्सा, चुम्बक-चिकित्सा आदि, का एकीकरण तथा समन्वय करके इन सब प्रणालियों के ज्ञान और अनुभव का प्रयोग रोगियों की चिकित्सा के लिए किया जाना चाहिए।

ऐस्कुलेपियस के मन्दिरों में रहने वाले प्राचीनकालीन पुजारी-चिकित्सक और पैथागोरियन समाज के चिकित्सक गणित, ज्योतिष, ज्यामिति, संगीत, नृत्य, ध्यान, एकाग्रता आदि का प्रयोग लोगों की मन-शरीर की चिकित्सा करने के लिए करते थे। इस प्रकार रोगी बिना किसी कष्ट के आरोग्य हो जाता था।

मनुष्य के स्थूल शरीर का सम्बन्ध प्रकृति से है और उसकी आत्मा दिव्य ईश्वरीय ज्योति का एक स्फुलिंग है। इसलिए शारीरिक स्वास्थ्य के लिए उसे प्राकृतिक नियमों का पालन करना चाहिए और आत्मोन्नति के लिए ईश्वर के सान्निध्य में रहकर आध्यात्मिक विचारों को

चिर-यौवन

अपनाना चाहिए। मनुष्य, जो विचार-शक्ति-सम्पन्न प्राणी है और जो विवेकानुसार कार्य करने में पूर्ण स्वतन्त्र है, अपने प्रारब्ध का स्वयं निर्माता है, उसका कल्याण केवल प्राकृतिक और ईश्वरीय नियमों के पालन में ही है, उनके उल्लंघन में नहीं। अपनी आत्मचेतना और अपने विकास की उत्तरोत्तर उन्नति के परिमाण के अनुसार वह सुखी और दीर्घजीवी बन सकता है और चाहे तो प्राकृतिक तथा आध्यात्मिक नियमों का उल्लंघन करके सदैव रोगी और दुःखी जीवन की प्राप्ति भी कर सकता है। ऐसा करने से अल्पायु में ही उसकी जीवनलीला समाप्त हो जायगी और वह जीवन के उस काल में मृत्यु-आलिंगन के लिए विवश हो जायगा, जब वस्तुतः उसकी मानसिक एवं शारीरिक शक्तियों का वास्तविक विकास प्रारम्भ हो रहा होगा।

भावी आरोग्यशालाएँ

निकट भविष्य में ही हमारे चिकित्सालयों का स्थान स्वास्थ्य-केन्द्र अर्थात् भावी 'ऐस्क्लेपिया' ले लेंगे। ये स्वास्थ्य-केन्द्र अधिक भीड़-भाड़ वाले शहरों की गगनचुम्बी अट्टालिकाओं में न बनकर पहाड़ों तथा घाटियों में स्वच्छ जल के झरनों और नदियों के पास बनाये जायेंगे, जहाँ सूर्य की धूप और साफ हवा प्रचुर मात्रा में प्राप्त होगी। कोई भी रोगी उस समय तक मुख्य भवन में प्रविष्ट नहीं होने दिया जायगा, जब तक कि उपवास, शरीर-दोष-बहिष्करण आदि उपायों द्वारा उसके शरीर तथा रक्त को शुद्ध नहीं कर लिया जाता। मनुष्य का स्वस्थ अथवा रोगी होना उसके रक्त के शुद्ध या अशुद्ध होने पर निर्भर करता है। अनेक प्रकार के विषों से दूषित रक्त शरीर की सभी ग्रन्थियों को और विशेषतया पोष-ग्रन्थि (Pituitary Gland) तथा तृतीय नेत्र-ग्रन्थि (Pineal) को विषाक्त कर देता है और उन्हीं दोनों ग्रन्थियों में मनुष्य के चेतन तथा अर्ध-चेतन मस्तिष्क स्थित हैं। शरीर में स्थित इन विषों

हो जायगा और इस प्रकार मनुष्य मृत्यु-पर्यन्त स्वस्थ रहेगा तथा उसकी आयु आधुनिक मनुष्य की आयु से लगभग सात गुना हो जायगी। वह स्वयं भी सुखी रहेगा और दूसरो के भी सुखी रहने में सहायक बनेगा।

हमारे कारागार अस्पतालों में बदल जायँगे; क्योंकि स्वास्थ्य की अवहेलना, प्राकृतिक कानूनो का उल्लंघन होने के नाते, प्रकृति के प्रति, समाज के प्रति तथा अपने प्रति अपराध माना जायगा और ऐसे अपराधी मनुष्य से उसकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता छीनकर उसे अस्पताल में भेज दिया जायगा। उसे उस समय तक वहाँ रखा जायगा जब तक वह स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमो के पालन को भली प्रकार नही समझ लेता और समाज में रहने के नियमो से परिचय प्राप्त नही कर लेता।

मेरे तुच्छ विचार के अनुसार यही भावी समाज की रूपरेखा होगी। परन्तु जब तक ऐसे आदर्श समाज की स्थापना नही होती और हमारा आत्मिक विकास पूर्ण नही हो जाता, उस समय तक उन सभी चिकित्सकों का, जो आरोग्य विज्ञान के जन्मदाता प्राचीन ग्रीस महापुरुष एस्कुलेपियस के सच्चे अनुयायी हैं, यह कर्तव्य है कि समाज के स्वास्थ्य-सुधार का जो पवित्र और महान् कार्य उनके सम्मुख है, उसे प्राणपण से करने का प्रयत्न करें। हम सभी को वर्तमान और भविष्य का दृढता से सामना करना चाहिए। यह हमारे वास्तविक ज्ञान तथा उस सत्य पर आधारित है जिसके द्वारा इस जमाने में, जबकि लोगो में आध्यात्मिक भावना का अभाव है और सच्चरित्रता के प्रति पूर्ण उदासीनता है, हमें जनसाधारण को रहने का स्वस्थ और सुखी ढंग सिखाना है।

अधिक बातें बनाने तथा लम्बे-लम्बे लेख लिखने के स्थान पर, जैसा कि इस समाज का तरीका है, यह उचित है कि हम लोगो के अपने कार्यो से एक आदर्श उपस्थित करें। प्रत्येक युग में अज्ञानी समाज-सुधारकों के सद्-प्रयत्नो को विफल करने के लिए ... उपस्थित की है, परन्तु अन्त में उन सुधारको को ही सर्वदा

का मनुष्य के स्वास्थ्य, मन तथा धार्मिक विकास पर घातक प्रभाव होता है।

इन आरोग्यशालाओं के ज्योतिष विभाग द्वारा यह निश्चय किया जायगा कि रोगी की राशि पर ग्रहों का क्या प्रभाव है। ज्योतिष सम्बन्धी निर्णय से रोगी के रोग का निदान करने में तथा उसके लिए उपयुक्त औषध के चयन में सहायता मिलेगी। नेत्रों की पुतलियों के निरीक्षण द्वारा भी रोग का निदान किया जाया करेगा।

उन भावी आरोग्यशालाओं को सुन्दर बागों, भव्य प्रस्तर-मूर्तियों तथा अन्य कलात्मक वस्तुओं से सुसज्जित किया जायगा। इसके अतिरिक्त भवन के एक भाग में महान् कलाकारों द्वारा निर्मित चित्र तथा मूर्तियों का संग्रह भी होगा। परन्तु इन कला-कक्षों में आधुनिक विकृत-मस्तिष्क-कलाकारों की कृतियों के लिए कोई स्थान नहीं होगा, बल्कि जितनी भी जल्दी इन आधुनिक कलाकृतियों का प्रदर्शन कानूनों की सहायता से रोक दिया जायगा अथवा इन्हें मानव-संस्कृति तथा बुद्धि का विकार समझकर नष्ट कर दिया जायगा, उतनी ही शीघ्र हमारे समाज के स्वास्थ्य में प्रगति होगी।

इन आरोग्यशालाओं में नाट्यशालाएँ भी होंगी, जहाँ सब प्रकार के नाटकों का प्रदर्शन किया जाया करेगा और ये नाट्यशालाएँ द्रुत-गति से आरोग्य लाभ करने वाले रोगियों से भरी रहा करेंगी। आरोग्यशाला का अध्यक्ष प्रत्येक रोगी के लिए औषध-नुस्खे के साथ ही एक नाटक-नुस्खा भी बनाएगा, जिसके आधार पर उसकी विशिष्ट मानसिक अवस्था के लिए उपयुक्त एवं विशेष प्रकार के नाटक उसे दिखाये जायेंगे।

जिस प्रकार पुरातन काल में नृत्य ईश्वर-आराधना का तथा अनेक मानसिक एवं भावना सम्बन्धी रोगों की शान्ति का साधन माना जाता था, उसी प्रकार इन आरोग्यशालाओं में भी रोगियों की चिकित्सा के लिए विभिन्न नृत्य-शैलियों का उपयोग किया जायगा।

हमारे शिक्षा-सदनों में विद्यार्थियों को केवल कोरा किताबी ज्ञान ही न बराबर विशिष्ट शारीरिक ज्ञान भी सिखाया जायगा। सेवा और सच्चरित्रता ही हमारे भावी विद्यालयों की शिक्षा का लक्ष्य होगा। आज की शिक्षा के लिए, जो मनुष्य को पैसे का दास, निकम्मा तथा स्वार्थी बनाती है और उसे समाज के शोषण का पाठ पढ़ाती है, वहाँ कोई स्थान नहीं होगा।

भावी माता-पिता अपने बच्चों के लिए विशाल धन-भण्डार तथा गगनचुम्बी अट्टालिकाओं को दैतृक सम्पत्ति के रूप में छोड़ना अधिक महत्वपूर्ण नहीं समझेंगे। वे चाहेंगे कि उनकी सन्तानें उचित शिक्षा प्राप्त कर, आत्म-नियन्त्रण, स्वावलम्बन और चारित्रिक अनुशासन सीखें, विचारों की स्वतन्त्रता एवं शुद्धता द्वारा ईशाराधन में प्रवृत्त हों और अपने देश तथा समाज की सेवा करने की उत्कट अभिलाषा उनके हृदय में हो। ऐसा सुन्दर वातावरण उत्पन्न होने पर वह समय आएगा जब मनुष्य अपने हृदय और आत्मा की गहराइयों में बैठकर यह सोचेगा कि वह केवल हृदयहीन, आत्मविहीन एवं धन कमाने की एक मशीन-मात्र ही नहीं है, वरन् एक जीवन तथा विचार-शक्ति-सम्पन्न प्राणी है, जिसका कर्तव्य अपने उस समाज तथा देश की सेवा करना है, जिसमें उसने जन्म लिया है। उसे इस प्रकार रहना है कि वह अपने लिए ही नहीं, दूसरों के लिए भी उपयोगी सिद्ध हो। वह इस विशाल संसार का एक नागरिक है। पुरुष (ईश्वर) उसका पिता और प्रकृति उसकी माँ है।

भावी समाज

आने वाले युग का मनुष्य, जिसकी शिक्षा तथा जिसके विचार इस प्रकार सुसंस्कृत होंगे, सदैव स्वस्थ एवं सुखी रहेगा और ऐसे सतुलित, स्वस्थ एवं अनुशासित शरीर के माध्यम से उसकी आत्मा का प्रकाशन भी ठीक-ठीक हो सकेगा। ऐसे आदर्श समाज से रोगों का समूल नाश

हो जायगा और इस प्रकार मनुष्य पुनः-पुनर्जन्म [illegible] होगा तथा उसकी आयु साधारण मनुष्य की आयु से अनेक गुना हो जायगी। वह स्वयं भी सुखी रहेगा और दूसरों के भी सुखी रहने में सहायक बनेगा।

हमारे वर्तमान वातावरण में बहुत कठिनाई है क्योंकि समाज की अस्वच्छता, प्राकृतिक वायु का प्रदूषण होने के कारण, प्रकृति के प्रति, समाज के प्रति तथा स्वयं प्रति अपराध अधिक [illegible] और ऐसे अपराधी मनुष्य से उनकी [illegible] [illegible] होकर [illegible] में भेज दिया जायगा। [illegible] उस समय तक वहीं रखा जायगा जब तक वह स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों के पालन का भली प्रकार नहीं समझ लेगा और समाज में रहने के नियमों से परिचय प्राप्त नहीं कर लेगा।

मेरे तुच्छ विचार के अनुसार यही भावी समाज की रूपरेखा होगी। परन्तु जब तक ऐसे आदर्श समाज की स्थापना नहीं होती और हमारा मानसिक विकास पूर्ण नहीं हो जाता, उस समय तक उन सभी विद्वानों का, जो भारतीय विज्ञान के अमरदाता प्रवीण [illegible] महापुरुष [illegible] के सच्चे अनुयायी हैं, यह कर्तव्य है कि समाज के स्वास्थ्य-सुधार का जो पवित्र और महान् कार्य उनके सम्मुख है, उसे आत्मबल से करने का प्रयत्न करें। हम सभी को संयम और ब्रह्मचर्य का दृढ़ता से पालन करना चाहिए। यह हमारे वास्तविक ज्ञान तथा उस मन्त्र पर आधारित है जिसके द्वारा इस ज़माने में, जबकि लोगों में आध्यात्मिक भावना का अभाव है और सच्चरित्रता के प्रति पूर्ण उदासीनता है हमें जनसाधारण को रहने का स्वस्थ और सुखी ढंग सिखाना है।

अधिक बातें बनाने तथा लम्बे-लम्बे लेख लिखने के स्थान पर, जैसा कि आज के इस समाज का तरीका है, यह उचित है कि हम लोगों के सम्मुख अपने कार्यों से एक आदर्श उपस्थित करें। प्रत्येक युग में अज्ञानी लोगों ने समाज-सुधारकों के सद्-प्रयत्नों को विफल करने के लिए बाधाएँ उपस्थित की हैं, परन्तु अन्त में उन सुधारकों को ही सर्दव

विजय प्राप्त हुई है और यह मानव-जीवन का एक अटल सिद्धान्त है कि अन्ततोगत्वा अन्धकार और अज्ञान पर सत्य की विजय होती है। "सत्य को कुचलकर यदि मिट्टी में भी मिला दिया जाय फिर भी उसका पुनरोत्थान निश्चित है।" ईश्वर के अनन्त वर्ष उसीके हैं। इसके विपरीत, असत्य पीड़ा से कराहता हुआ, अपने उपासकों के मध्य ही मर जाता है।

अतएव संसार के समस्त भूभागों में बसने वाले मानव-समाज की भलाई के लिए जिस संघर्ष में हम जुटे हैं, उसमें हमारी ही विजय होगी, और केवल इसी प्रकार एक शान्तिप्रिय तथा सुखी समाज की स्थापना हो सकती है। ऐस्कुलेपियस के अनुयायियों का अथक परिश्रम, उनका त्याग और बलिदान एक-न-एक दिन अवश्य सफल होगा। तब इस पवित्र और महान् कर्तव्य को करने के लिए यदि किसीको सतोष होगा तो केवल हमें ही। जिन लोगों को हमारे कार्य से लाभ पहुँचेगा उनकी कृतज्ञता और ईश्वर का आशीर्वाद भी तो हमें ही प्राप्त होगा।

८

स्वास्थ्य

स्वास्थ्य शरीर की स्वाभाविक अवस्था का नाम है, जब एक स्वस्थ शरीर के सभी कार्य अर्ध-चेतन मस्तिष्क के संचालन में ऐसे स्वाभाविक रूप से होते रहते हैं कि किसी को उनका पता ही नहीं चलता। श्वास लेने की क्रिया पर भी यह बात पूरी तरह लागू होती है। परन्तु दमा तथा श्वास रोग से पीड़ित लोगों के लिए या जल में डूबने वाले व्यक्तियों के लिए तो श्वास से बढ़कर और दूसरी कोई चीज़ मूल्यवान नहीं है। श्वास ही उनका जीवन है। ऐसी स्थिति में पड़ने पर ही मनुष्य को शारीरिक स्वास्थ्य तथा प्राकृतिक पदार्थों के महत्व का पता चलता है, जिनकी वह साधारणतया उपेक्षा करता रहता है। प्रकृति अपने सर्वोच्च ज्ञान द्वारा गुप्त रूप से सभी प्राणियों का मार्ग-दर्शन करती रहती है। यदि प्रकृति इस प्रकार हमारा मार्ग-दर्शन न करे तो सभी प्राणियों का संसार में अस्तित्व असम्भव हो जाय।

हम श्वास क्यों लेते हैं? श्वास द्वारा हम वायु से शरीर के लिए भोजन प्राप्त करते हैं। मनुष्य अपना ठोस एवं तरल आहार तो मुख से प्राप्त करता है और वायु-आहार अर्थात् ऑक्सीजन तथा नाइ- ... अपनी नासिका द्वारा। परन्तु आजकल बहुत से लोग—स्त्रियाँ

घनफुट वायु की आवश्यकता होती है। साधारणतया १०० घनफुट वायु ही एक बार श्वास लेने में मनुष्य के शरीर में प्रवेश करती है। इसलिए फेफड़ो को प्रथम तो वायु कम परिमाण में मिलती है, दूसरे उनके नीचे तथा ऊपर के कोशो में दूषित वायु पर्याप्त मात्रा में रुकी रह जाती है। एक स्थान में पड़े रहने से जो दशा जल की हो जाती है वही दशा फेफडो में रुकी हुई वायु की होती है। फेफड़ो के उन भागों में, जहाँ वायु इस प्रकार स्थिर रहती है, स्नायु-जाल गलने लगता है। यही क्षय रोग तथा फेफड़ों की अन्य बीमारियों का कारण है।

अनुमानतः १०,००० मनुष्यो में से एक भी ऐसा नही मिलेगा जो उचित प्रकार से साँस लेना जानता हो। अकेले क्षय रोग से अमेरिका में प्रतिवर्ष १००,००० मनुष्य मर जाते हैं। यदि लोग साँस लेने की उचित क्रिया से परिचित हो जायँ तो क्षय रोग के प्रकोप से बचा जा सकता है। जो मनुष्य गहरे-गहरे श्वास लेने की आदत डाल लेते हैं उन्हें क्षय रोग, निमोनिया तथा अन्य फुस्फुस विकारो का भय नहीं रहता। हलके श्वासो द्वारा हवा की अपर्याप्त मात्रा फेफडो में धारण करने से शरीर में दुर्बलता आ जाती है और यह दुर्बलता ही क्षय रोग का प्रमुख कारण है। इस प्रकार अधिक समय तक दुर्बलता बनी रहने से शरीर रोग के कीटाणुओ का सामना करने में असमर्थ हो जाता है। योग्यतम प्राणी ही जीवन-संघर्ष में विजयी होकर जीवित रह सकते हैं। इस प्राकृतिक नियम के अनुसार ही शरीर और रोग का संघर्ष सदैव से चला आ रहा है। गतिशून्य रहने के कारण फेफड़ों के कुछ भाग कमज़ोर हो जाते हैं। इन्हीं भागों में क्षय रोग के कीटाणुओं को पनपने का अवसर मिलता है। एक बार जब वे अपना अड्डा फेफड़ों में जमा लेते हैं तो बड़ी शीघ्रता से उनकी संख्या बढ़ने लगती है और अपने चारो ओर स्थित फेफडो के भागों का नाश करने लगते हैं। जो मनुष्य गहरे-गहरे साँस लेते है उनके फेफड़ों का स्वस्थ स्नायु-जाल इन रोगाणुओं का सामना कर इन्हें परास्त कर देता है। शरी-

फिर-ओषर

शरीर में शक्ति, स्फूर्ति, उल्लासिता और जीवन का सचार हो रहा है। तदनन्तर श्वास को भीतर रोकिए और सात तक गिनिए। फिर धीरे-धीरे सात तक गिनते हुए श्वास को छोड़िए और साथ ही इस प्रकार ध्यान कीजिए मानो श्वास के साथ ही आप विषैली गैसें तथा अन्य हानिकारक तत्वों को भी शरीर से बाहर निकाल रहे हैं। इस व्यायाम को आप उस समय तक बार-बार करते रहें जब तक आप थक नहीं जाते। इस व्यायाम के मध्य में विश्राम नही लेना चाहिए। इस व्यायाम को प्रारम्भ करने से पहले छोटे-छोटे किन्तु गहरे-गहरे कुछ श्वास लेकर फेफड़ो में रुकी हुई वायु को बाहर निकाल देना चाहिए। इस व्यायाम को धीरे-धीरे ८:८:८, ६.६.६ या १० १०:१० की गिनती तक बढ़ा सकते हैं। किन्तु यह व्यायाम करने वाले के फेफड़ो की क्षमता पर ही निर्भर करता है। व्यायाम करने में फेफड़ों पर अनुचित दबाव नहीं डालना चाहिए।

फेफड़ों की शुद्धि तथा उनमें शक्ति सचार करना

नथुनों से धीरे-धीरे किन्तु एक लम्बा श्वास खींचिए। जितनी देर सुगमता से आप श्वास भीतर रोक सकें, रोकिए। फिर होंठों को सीटी बजाने की स्थिति में लाकर रुके हुए श्वास को मुँह के रास्ते थोड़ा-थोड़ा करके बाहर निकालिए। फिर जितनी देर आसानी से आप फेफड़ों को वायुरहित रख सकते हैं, रखिए। पुन पहले की भाँति नथुनों से श्वास भीतर खींचिए। इस क्रिया को कई बार कीजिए। इस व्यायाम से रुकी हुई वायु बाहर निकल जाने से केवल फेफड़ों की शुद्धि ही नहीं होती, अपितु फेफड़ों तथा समस्त शरीर को शक्ति की भी प्राप्ति होती है।

मुख द्वारा प्राणायाम

मुख से गहरा और पूर्ण श्वास खींचिए और फिर एक ही श्वास में

मुँह से बाहर निकाल दीजिए। इस क्रिया को बार-बार कीजिए। इस व्यायाम से मुँह की समस्त नाड़ियों को बल मिलता है। समस्त श्वसन-पद्धति (Respiratory System) तथा उदरस्थ अवयवों के लिए यह एक अत्यन्त लाभदायक व्यायाम है। यह व्यायाम यदि उचित रीति तथा पूर्ण उत्साह से किया जाय तो लगिक अंगों को भी पुष्ट करता है। किन्तु यह आवश्यक है कि इन व्यायामों को तभी करना चाहिए जब मनुष्य अपने खान-पान को नियमित कर ले तथा मदिरा और तम्बाकू इत्यादि मादक वस्तुओं का पूर्ण रूप से परित्याग कर दे। ऐसे सभी व्यायाम करते समय शरीर को स्वाभाविक रूप से ढीला छोड़ देना चाहिए।

महत्त्वपूर्ण तथ्य

उचित प्रकार से श्वास लेने से ही सीने की गति की लयबद्धता बनी रहती है और यही गति आगे बढ़कर आमाशय के अवयवों तथा अन्तड़ियों में पहुँचती है और उनको उनके अपने व्यापार में प्रवृत्त होने के लिए गति प्रदान करती है। उचित प्रकार से श्वास लेने से रक्त को पर्याप्त ओषजन तथा जीवन-शक्ति प्राप्त होती है, जो शरीर के प्रत्येक अवयव के लिए आवश्यक है। वास्तव में हम अपने प्रत्येक विचार, अपनी प्रत्येक इच्छा तथा मासपेशियों की एक हल्की-सी गति में भी कुछ-न-कुछ जीवन-शक्ति व्यय करते रहते हैं। यह जीवन-शक्ति फेफड़ों में श्वास-क्रिया द्वारा उत्पन्न होती है। इन बातों से आप यह जान सकते हैं कि मनुष्य के लिए उचित प्रकार से श्वास लेना कितना महत्त्व-पूर्ण है।

आमाशय-स्थित भोजन को पचने के लिए ओषजन की बड़ी आव-श्यकता है, जिसे वह आमाशय की दीवारों के कोषों में बहने वाले रक्त से चूसता है। इस प्रकार ओषजन से आरक्षित (Oxygenated) भोजन स्नायु-जाल के कोषों, मांसपेशियों तथा हड्डियों में प्रवेश कर जाता है।

रक्त में ऑक्सीजन की कमी होने पर भोजन ठीक प्रकार नहीं पच सकता। ऐसी अवस्था में मनुष्य चाहे जितना ही पौष्टिक और जितनी ही अधिक मात्रा में भोजन क्यों न करे, वह कदापि स्वस्थ और सुखी नहीं रह सकेगा। इसके विपरीत उसकी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति का ह्रास होने लगेगा। उसका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन बिगड़ने लगेगा, यद्यपि इसके लिए कोई स्पष्ट कारण नहीं होगा। वर्तमान समाज की इस रहस्यपूर्ण स्थिति का एकमात्र कारण यही है कि लोग यह नहीं जानते कि श्वास किस प्रकार लेना चाहिए। अनेक लोग आज या तो अस्पतालों में रोग-शैया पर पड़े हैं, या घरों में पड़े कराह रहे हैं, अथवा मृतप्राय अवस्था में जीवन-भार लिये सड़कों पर घूमते दिखाई देते हैं। श्वास किस प्रकार लेना चाहिए, यह न जानने के कारण ही वे प्रति वर्ष लाखों डॉलर डॉक्टरों, औषधियों तथा अस्पतालों पर खर्च करते रहते हैं।

हमारे देश को जहाँ अपने लाखों रोगी मनुष्यों की असमर्थता के कारण प्रति वर्ष करोड़ों डॉलर की हानि उत्पादन घटने के कारण उठानी पड़ती है, वहाँ उनकी चिकित्सा पर भी पर्याप्त व्यय करना पड़ता है। परन्तु आज तक किसीने इस ओर लोगों का ध्यान आकर्षित नहीं किया कि उन्हें स्वस्थ रहने के लिए उचित प्रकार से श्वास लेने की कितनी आवश्यकता है। जो धन हम निकोटीन नामक विष अर्थात् सिगरेट इत्यादि तथा मदिरा-प्रयोग के गन्दे व्यसनों तथा पथ-भ्रष्ट करने वाले प्रचार पर व्यय करते हैं, यदि उसका सौवाँ भाग भी हम अपने देशवासियों को यह सिखाने पर खर्च करते कि श्वास कैसे लेना चाहिए और जीवन को प्राकृतिक नियमों के अनुसार कैसे बिताना चाहिए, तो हम अपने राष्ट्रीय ऋण का एक बहुत बड़ा भाग कुछ ही वर्षों में चुका सकते थे। हमारे अस्पताल जो रोगियों से पटे पड़े हैं, बिल्कुल खाली हो जाते तथा समस्त देशवासी स्वस्थ, सुखी और समृद्ध होते। हमारा देश, जो संसार का एक सुन्दरतम देश माना जाता है और जो सभी

प्रकार के प्राकृतिक साधनों से पूर्ण है, केवल इसी कारण आज अनेक विपत्तियों में उलझा हुआ है।

स्वास्थ्य तथा यौवन की रक्षा का एक और उपाय यह भी है कि शरीर को ढीला छोड़ दिया जाय। शरीर की प्रत्येक मांसपेशी तथा इसके प्रत्येक अंग को कभी-कभी ढीला छोड़ना चाहिए। ऐसा करने से शरीर का सब तनाव दूर होकर अंग-अंग में जीवन-शक्ति का संचार हो जाता है। शिथिलीकरण से अनेक लाभ हैं और यदि साथ ही ध्यान की एकाग्रता भी बनी रहे तो लाभ और भी अधिक होता है। ऐसी अवस्था में समस्त ज्ञानेन्द्रियों तथा कर्मेन्द्रियों के चैतन्य का निरोध करके शरीर को शिथिल किया जाय। तदनन्तर उस शान्त तथा एकान्त वातावरण में मनुष्य को चाहिए कि अपनी आत्मा का इस समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त उस अखण्ड आत्म-स्रोत से सम्पर्क स्थापित करे, जहाँ से उसे अपनी शारीरिक तथा मानसिक क्षमतानुसार तथा अपनी आत्म-चेतना के विकास के परिमाणानुसार प्रकाश की प्राप्ति होती है।

विश्वास

जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मनुष्य यदि सफलता का इच्छुक है और यदि वह स्वस्थ रहना चाहता है, तो उसमें आत्म-विश्वास का भी होना आवश्यक है और अपने कार्य के औचित्य में विश्वास भी। यदि किसी मनुष्य को अपने कार्य के औचित्य में तनिक भी सन्देह है तो उस काम में हाथ न डालना ही उसके लिए श्रेयस्कर है। विश्वास से हमारा अभिप्राय ऐसे अन्धविश्वास से कदापि नहीं है कि जैसा हम सोचते अथवा करते हैं वही उचित है। अन्धविश्वास की उत्पत्ति अज्ञान या किसी बाह्य अथवा आन्तरिक प्रत्यक्ष के अर्द्ध-सम्मोहन से होती है।

हममें से अधिकांश लोग 'विश्वास' शब्द का बिल्कुल ही गलत अर्थ लगाते हैं। यूनानी भाषा में 'विश्वास' के लिए 'पिस्तिस' (Pistus) नामक शब्द का प्रयोग होता है। पिस्तिस शब्द 'पैथो' (Peitho) और

से परस्पर मिलकर एकाकार हुए रहते हैं, इसलिए उसके मन तथा भावना में थोड़ी-सी भी गड़बड़ होने पर उसका प्रभाव उसके स्थूल शरीर पर पड़े बिना नहीं रहता।

स्नायु-मण्डल में तनाव उपस्थित होने पर तथा समस्त शरीर में जीवन-शक्ति का संचार करने के लिए मानसिक एवं भावनात्मक चिन्ताओं से रहित उन्मुक्त हास अत्यन्त आवश्यक तथा लाभदायक है। हँसना चिन्ता-मुक्ति का साधन है।

मनुष्य की अपने कार्य में पूर्ण रुचि होनी चाहिए। जो भी कार्य वह करे, मन लगाकर करे। जितना ही अधिक कोई मनुष्य अपने कार्य में मन लगाता है उतना ही कम वह थकता है और जीवन में सदैव प्रसन्न-चित्त बना रहता है। जो मनुष्य अपने कार्य में रुचि नहीं लेता अथवा उससे घृणा करता है, उसे या तो अपने कार्य में रुचि लेने की आदत डालनी चाहिए या फिर उस कार्य को छोड़कर कोई दूसरा कार्य ढूँढना चाहिए। अनेक स्नायु-रोगों का कारण ऐसे कार्य हैं जिन्हें मनुष्य रुचि न होने पर भी करता रहता है। अपनी इच्छा तथा भावना के विरुद्ध कार्य करने से मनुष्य में दासता की मनोवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, जो प्राकृतिक नियमों के विपरीत है और इसी कारण मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

जिस प्रकार मनुष्य के लिए दिन के समय अपने कार्यों में रुचि लेना आवश्यक है, उसी प्रकार रात्रि में गहरी नींद भी उसकी शारीरिक थकान दूर करने तथा स्फूर्ति एवं शक्ति प्रदान करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। सोने के लिए गद्दा या बिछौना अधिक गुदगुदा नहीं होना चाहिए, क्योंकि अधिक गुदगुदा गद्दा होने से शरीर उसमें धँस जाता है और सीधा न रहकर स्थान-स्थान पर ऊँचा-नीचा हो जाता है। इससे शरीर में रक्त तथा जीवन-शक्ति का प्रवाह [illegible] है। बिना तकिया लगाये और सिरहाना उत्तर की ओर कर[illegible] अधिक अच्छा होता है।

चिर-यौ[illegible]

'पैथोमाय' (Peithomai) किया से लिया गया है, जिसका अर्थ है जीतना, अनुनय करना, तर्क करना, किसी बात में विश्वास करना, निर्भर करना। अतएव पिस्तिस शब्द के विश्वास, आस्था, प्रमाण और प्रोत्साहन आदि अर्थ होते हैं। वस्तुतः आजकल लोग इस महत्वपूर्ण शब्द का बड़ा ही दुरुपयोग कर रहे हैं। इसका वास्तविक अर्थ विश्वास, प्रोत्साहन तथा प्रमाण है, जो किसी बात अथवा वस्तु के विषय में सावधान एवं गम्भीर अनुसन्धान के पश्चात् निश्चित किया गया है। इस प्रकार के अनुसन्धान के लिए मनुष्य में ज्ञान, योग्यता तथा विवेक बुद्धि का होना आवश्यक है। यदि अपने विवेकपूर्ण अनुसन्धान द्वारा वह किसी बात अथवा वस्तु के औचित्य, उसकी उपयोगिता तथा वाञ्छनीयता के विषय में सन्तुष्ट हो जायगा, तभी वह मनुष्य उस बात, वस्तु अथवा व्यक्ति-विशेष में विश्वास कर सकेगा।

अंग्रेजी शब्द 'फेथ' (विश्वास) के पर्यायवाची ग्रीक शब्द 'पिस्तिस' के उपरोक्त विवेकपूर्ण अर्थों से यह अनुमान किया जा सकता है कि यदि किसी मनुष्य को किसी अन्य मनुष्य में अथवा किसी वस्तु-विशेष में विश्वास है, तो उसके विश्वास करने से पूर्व उसे उस अन्य मनुष्य अथवा वस्तु के विषय में जानकारी है। इस प्रकार के विश्वास से मनुष्य स्वास्थ्य, प्रगति एवं सफलता की प्राप्ति करता है। बाइबल के अनुसार इस प्रकार का विवेकी एवं दृढ़ विश्वासी मनुष्य यदि चाहे तो पहाड़ को भी हिला सकता है, परन्तु अज्ञानी और अन्धविश्वासी मनुष्य ऐसा नहीं कर सकता।

एक प्राचीन कहानी है कि एक तूफान के कारण एक नाव डूब गई। नाव के यात्री तथा नाविक आत्म-रक्षा के लिए समुद्र में कूद गए। उनमें से दो नाविक तैरते-तैरते एक-दूसरे के निकट आ गए। थोड़ी ही देर में उनमें से एक जीवन की आशा छोड़ बैठा और तैरना बन्द करके 'अथैना' नामक देवी से चिल्ला-चिल्लाकर अपनी रक्षा की प्रार्थना करने लगा, परन्तु वह डूबता ही जाता था। दूसरे नाविक ने उसमें

फिर-थों—

कहा—मित्र ! प्रार्थना के साथ-साथ तैरते भी तो रहो, क्योंकि प्रकृति उसीकी सहायता करती है जो आलसी नहीं है और उद्योग करता रहता है।

मनुष्य को पता होना चाहिए कि प्रकृति में न दया है और न कोई चमत्कार। प्राकृतिक रचना एवं विकास की सम्पूर्ण योजना कुछ अटल नियमों पर आधारित है, और समस्त पदार्थों एवं प्राणियों का विकास एक निरन्तर एवं अविकल रूप से किये जाने वाले प्रयास का ही परिणाम है। निरन्तर विवेकपूर्वक कार्य करते रहने में ही सफलता का रहस्य छिपा है। आलसी और प्रमादी मनुष्य प्रकृति से कुछ भी प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकता। मानव को अपने विकास की वर्तमान अवस्था तक पहुँचने के लिए अत्यधिक परिश्रम करना पड़ा है। न जाने कितने युगों में अनेक कष्टों एवं बाधाओं का सामना करता हुआ वह निरन्तर प्रयत्नशील बना रहा है और अपने कार्य की सफलता के लिए उसे अगणित बलिदान करने पड़े हैं। प्राकृतिक रचना एवं विकास का यह आधारभूत मूल नियम है जिसे संसार की कोई शक्ति बदल नहीं सकती।

यदि केवल स्वाध्याय से मानव-विकास सम्भव होता तो ब्रह्माण्ड में सौर-मण्डल, नक्षत्र-मण्डल और आकाश-गंगा की रचना न करके ईश्वर ने अनेक विशाल पुस्तकालय बनाये होते। प्रकृति रूपी पुस्तक को अध्ययन करने वाले मनुष्यों का अनुभव तथा इस पृथ्वी पर युग-युगान्तरों से रहने वाले पूर्वकालीन मनुष्यों द्वारा संचित ज्ञान ही वास्तविक ज्ञान है। वस्तुतः मानव-विकास के लिए यह पृथ्वी इस अखण्ड ब्रह्माण्ड सम्बन्धी अनन्त ज्ञान के विश्वविद्यालय का ही एक विभाग है।

मानसिक वृत्ति

मनुष्य को जीवन में सदैव प्रसन्न-चित्त रहना चाहिए। क्योंकि मनुष्य के मन शरीर तथा भावना-शरीर एवं स्थूल शरीर में कोशो

से परस्पर मिलकर एकाकार हुए रहते हैं, इसलिए उसके मन तथा भावना में थोड़ी-सी भी गड़बड़ होने पर उसका प्रभाव उसके स्थूल शरीर पर पड़े बिना नहीं रहता।

स्नायु-मण्डल में तनाव उपस्थित होने पर तथा समस्त शरीर में जीवन-शक्ति का संचार करने के लिए मानसिक एवं भावनात्मक चिन्ताओं से रहित उन्मुक्त हास्य परम आवश्यक तथा लाभदायक है। हँसना चिन्ता-मुक्ति का साधन है।

मनुष्य की अपने कार्य में पूर्ण रुचि होनी चाहिए। जो भी कार्य वह करे, मन लगाकर करे। जितना ही अधिक कोई मनुष्य अपने कार्य में मन लगाता है उतना ही कम वह थकता है और जीवन में सदैव प्रसन्न-चित्त बना रहता है। जो मनुष्य अपने कार्य में रुचि नहीं लेता अथवा उससे घृणा करता है, उसे या तो अपने कार्य में रुचि लेने की आदत डालनी चाहिए या फिर उस कार्य को छोड़कर कोई दूसरा कार्य ढूँढ़ना चाहिए। अनेक स्नायु-रोगों का कारण ऐसे कार्य हैं जिन्हें मनुष्य रुचि न होने पर भी करता रहता है। अपनी इच्छा तथा भावना के विरुद्ध कार्य करने से मनुष्य में दासता की मनोवृत्ति उत्पन्न हो जाती है, जो प्राकृतिक नियमों के विपरीत है और इसी कारण मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

जिस प्रकार मनुष्य के लिए दिन के समय अपने कार्यों में रुचि लेना आवश्यक है, उसी प्रकार रात्रि में गहरी नींद भी उसकी शारीरिक थकान दूर करने तथा स्फूर्ति एवं शक्ति प्रदान करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। सोने के लिए गद्दा या बिछौना अधिक गुदगुदा नहीं होना चाहिए, क्योंकि अधिक गुदगुदा गद्दा होने से शरीर सोते समय उसमें धँस जाता है और सीधा न रहकर स्थान-स्थान पर ऊपर-नीचे मुड़ जाता है। इससे शरीर में रक्त तथा जीवन-शक्ति का प्रवाह रुक जाता है। बिना तकिया लगाये और सिरहाना उत्तर की ओर करके ...ो अधिक अच्छा होता है।

मनुष्य के जीवन में मनोरंजन का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनमें श्रेष्ठतम खुले स्थानों पर जाकर व्यायाम करना, खेलना तथा दौड़ना आदि है। मधुर संगीत की ध्वनि पर ताल के साथ नृत्य करना एक अत्यन्त लाभदायक व्यायाम तथा मनोरंजन है। यही नहीं, मन तथा भावनाओं की उलझनों को दूर करने का एक उत्तम साधन भी है।

शरीर के विभिन्न अवयवों की स्थिति समस्त शरीर के आसन-योग पर निर्भर है। अतः चलते समय, बैठे हुए तथा खड़े होने के समय मनुष्य का शरीर बिल्कुल सीधा तथा स्वाभाविक रूप से ढीला रहना चाहिए। सोते समय शरीर पूर्णतया ढीला पड़ा होना चाहिए। सोने के कमरे में खिड़कियाँ, दरवाजे आदि इस प्रकार हो कि वायु का भली प्रकार प्रवेश हो सके। ओढ़ने के लिए इतना कपड़ा होना चाहिए कि शरीर का सामान्य ताप बना रहे, परन्तु कपड़ा इतना अधिक भारी नहीं होना चाहिए कि गर्मी के कारण अथवा श्वास बन्द होने के कारण दम भी घुटने लग जाय। सोते समय शरीर को नंगा रखना चाहिए, क्योंकि इस अवस्था में एक तो शरीर बन्धनरहित होने के कारण मुक्त रहता है और दूसरे वायु, जो स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है, उसके शरीर से सीधे सम्पर्क में आती है। पाजामा तथा बनियान पहनने पर वायु का शरीर से सम्पर्क ठीक-ठीक नहीं हो सकता।

मनुष्य को चाहिए कि अपने शरीर की बाह्य तथा आन्तरिक दोनों प्रकार की शुद्धि का पूरा-पूरा ध्यान रखे। इसके लिए उसे कम-से-कम आठ-दस गिलास पानी प्रतिदिन अवश्य ही पीना चाहिए, जिससे कि अन्नस्रोतस् (Alimentary Canal) सदैव साफ रहे और कोष्ठबद्धता न होने पाए, क्योंकि हमारे वर्तमान समाज में पाये जाने वाले अनेक रोगों का कारण कोष्ठबद्धता ही है। शरीर की त्वचा भी स्वच्छ रहनी चाहिए। इससे शरीर के छिद्र पूरी तरह खुल जाते हैं, पसीना सुगमता से बाहर निकल जाता है और साथ ही शरीर में उत्पन्न मल भी

शरीर से निकल जाता है।

त्वचा को स्वस्थ रखने के लिए प्रतिदिन प्रात:काल शरीर रगड़ने के ब्रुश से शरीर को सिर से लेकर पैरों तक रगड़ना चाहिए। इसके लिए सर्वप्रथम सिर से प्रारम्भ करें और तत्पश्चात् मुँह, गर्दन, सीना, बाँहें, पेट, टाँगें, जाँघें, पैरों के तलवे और पीठ को रगड़ें। प्रत्येक अंग को रगड़ते समय इस बात का ध्यान रखें कि रगड़ने की क्रिया अंगों के बाहरी छोर से प्रारम्भ होकर हृदय की ओर समाप्त हो। इस व्यायाम से नाड़ियों में स्फूर्ति आती है, शरीर के कोशों में नव-जीवन का संचार होता है और वे सूक्ष्म-ग्राही (Sensitive) होने के कारण गर्मी तथा सर्दी की ऋतुओं में शारीरिक तापमान का समुचित सन्तुलन बनाये रखते हैं।

स्वास्थ्य और यौवन के लिए आवश्यक बातें

आधुनिक मनुष्य में एक बड़ा दोष भूख से अधिक भोजन करना है। अधिकांश लोगों के दैनिक भोजन में प्रोटीन एवं स्टार्च का आधिक्य होता है और ये दोनों ही शरीर में अम्ल तत्त्वों के उत्पादक हैं। यदि मनुष्य को इस बात का ज्ञान है तो वह शरीर में स्थित अम्लता तथा विषों के भार का सहज ही अनुमान लगा सकता है। इससे शरीर में पहुँचा हुआ भोजन विषाक्त हो जाता है, और शरीर जकड़ा-सा रहता है। यह उसी प्रकार होता है जैसे कोई इंजिन-ड्राइवर इंजिन में स्थित वायु की ओपजन के अनुपात से अधिक पैट्रोल भर दे। ऐसा करने से इंजिन के सिलेण्डर, वाल्व और पिस्टन आदि सभी पुर्जे धुएँ की स्याही से आच्छादित हो जायेंगे और इंजिन की शक्ति बहुत कम हो जायगी। और हो सकता है कि इंजिन काम करना ही बन्द कर दे।

हमारे समाज में अधिकांश मनुष्यों के शरीरों की यही दशा है। ... जिन को भी सफाई, पूर्ण परीक्षण एवं पुनर्नवन की आव- है। शरीर की सफाई के लिए सबसे सुन्दर साधन उपवास है।

जब मनुष्य भोजन त्याग देता है तो पाचन-क्रिया से सम्बन्धित अवयवों को आराम मिल जाता है और साथ ही शरीर-कोशों की क्रिया भी बदल जाती है। वे शरीर में प्रवाहित रक्त से प्राप्त तत्वों का ग्रहण बन्द कर देते हैं और इसके स्थान पर उन हानिकारक पदार्थों को बाहर निकालने लगते हैं जो वर्षों से अधिक खाने के कारण उनमें एकत्रित होते रहते हैं। इस प्रकार शरीर के दूषित पदार्थ बाहर निकल जाने पर शरीर शुद्ध और निर्मल हो जाता है तथा रक्त शरीर में सुचारु रूप से प्रवाहित होने लगता है और शारीरिक अंगों में जीवन-शक्ति का निर्बाध सचार होने लगता है। उपवास द्वारा ही शरीर को नवस्फूर्ति एवं नवयौवन की प्राप्ति हो सकती है। उपवास कई प्रकार के होते हैं। सप्ताह में एक दिन निराहार रहकर केवल फलों का रस और विशेषकर सन्तरे का रस लेना अत्यन्त लाभप्रद है, ऐसी डॉक्टरों की राय है। और वर्ष में एक बार तीन या चार दिन का उपवास व्रत रखना भी स्वास्थ्य के लिए परमोपयोगी है। इस प्रकार के उपवास व्रत रखने वाले मनुष्य का वस्तुत: कायाकल्प होकर वह दीर्घजीवी बनता है। वह स्वस्थ एवं बलवान बनता है और आयु में भी कम दिखाई पड़ता है। इस प्रकार के उपवास करते समय पानी पर्याप्त मात्रा में पीना चाहिए और दिन में एक बार एनिमा द्वारा अथवा आँतों में जल-सिंचन-प्रणाली द्वारा मल को शरीर से बाहर निकालना आवश्यक है। आन्त्र-जल-सिंचन की क्रिया किसी अनुभवी मनुष्य द्वारा सम्पन्न करानी चाहिए।

नवयौवन-प्राप्ति का दूसरा साधन शारीरिक शिथिलीकरण है। जिस समय किसी कार्य में रत न हो, उस समय यह क्रिया करनी चाहिए। धूप-स्नान भी यदि उचित ढंग से किया जाय तो शरीर को स्वस्थ रखने का एक सुन्दर साधन है। लैंगिक-अंगों (Sex Organs) को भी धूप-स्नान कराना आवश्यक है।

कम-से-कम दिन में एक बार दाँतों को अवश्य साफ करना चाहिए

इसके लिए यदि सोने से पूर्व रात्रि का समय रखा जाय तो अधिक उप-युक्त होगा। बाजारों में बिकने वाले दाँतों के पेस्टों (Tooth Pastes) में एक प्रकार के पत्थर (Pumice) का प्रयोग किया जाता है जो अत्यन्त हानिकारक है, क्योंकि इसके निरन्तर प्रयोग से दाँतों की प्रकृति-प्रदत्त पालिश, जो रोगाणुओं से दाँतों की रक्षा करती है, उतर जाती है। सबसे उत्तम मंजन नींबू का रस है और इसीसे दाँतों को साफ करना चाहिए। इसके प्रयोग की क्रिया इस प्रकार है कि दो अंगुलियाँ नींबू के रस में भिगोकर उनसे मुँह के भीतर के मसूड़ों तथा अन्य आन्तरिक त्वचा की मालिश करनी चाहिए।

वृद्धावस्था का कारण

दूध को मानव-आहार बनाने के विषय में लोगों में विभिन्न मत पाये जाते हैं। राज्य सरकारों तथा दुग्ध-विक्रेता संघों के निरन्तर प्रचार के कारण लोगों में दूध पीने की आदत बन गई है। लोगों का विश्वास है कि दूध दैनिक भोजन का एक आवश्यक अंग है। यह धारणा बिल्कुल गलत है। माता के स्तनों में दूध की उत्पत्ति विधाता ने इसलिए की है कि जब तक बच्चा ठोस पदार्थों को भोजन के रूप में लेने में असमर्थ है तब तक उसे दूध का आहार मिलता रहे। उन छोटे शिशुओं के लिए दूध प्राकृतिक आहार है और प्राकृतिक रूप में शुद्ध दूध ही उन्हें प्राप्त होता है। परन्तु आजकल जो दूध लोगों को बाज़ार में मिलता है वह प्रथम तो अनेक स्थानों से इकट्ठा किया जाता है और फिर उसे उबालकर पास्चुराइज्ड (Pasteurized) किया जाता है। पास्चुराइजेशन की प्रक्रिया के कारण दूध के विटामिन तथा प्राकृतिक क्षार नष्ट हो जाते हैं। स्मरण रहे कि ये विटामिन तथा क्षार ही भोजन को पौष्टिक बनाते हैं। आजकल जो दूध हमें घरों अथवा जलपान गृहों में पीने को मिलता है, उसमें चूने की मात्रा अधिक होती है और [illegible] तथा क्षार की भारी कमी पाई जाती है। इस दूध के पीने से

परन्तु मनुष्य की सन्तान को युवा होने में बीस वर्ष लगते हैं। इसके अतिरिक्त बछड़ा जवान होकर मनुष्य से आकार में भी बड़ा हो जाता है। इस कारण गाय का दूध बछड़े के शरीर के पोषण के लिए ही उपयुक्त है, क्योंकि इसमें चूने की मात्रा अधिक होती है। इसलिए यह निश्चित है कि गाय का दूध बछड़े के लिए ही बनाया गया है, मनुष्य के लिए नहीं। हां पानी मिला बकरी का दूध एक उत्तम आहार है। दूध का सर्वोत्तम विकल्प सोयाबीन-दुग्ध (Soy Bean Milk) है। इसमें चूने की मात्रा स्त्री के दूध की मात्रा के लगभग बराबर ही है, और उसमें मौजूद प्रोटीन स्त्री के दूध में उपस्थित क्षारोत्पादक प्रोटीन के प्रकार की ही होती है, अम्लोत्पादक नहीं, जैसी कि गाय के दूध तथा अन्य भोजनों में होती है।

जो मनुष्य अनेक वर्षों तक यौवन को सुरक्षित रखना चाहता है उसको चाय, कॉफी तथा इसी प्रकार के अन्य गर्म पेय पीना छोड़कर जड़ी-बूटियों की पत्तियों से तैयार की हुई चाय पीनी चाहिए। इस प्रकार की जड़ी-बूटियों में सोवा (Peppermint), अल्फाल्फा (Alfaalfa), पुदीना (Mint), केसर (Saffron), शतपुष्पिका (Dill) आदि हैं। इन जड़ी-बूटियों में रक्त को शुद्ध करने तथा शरीर को स्फूर्ति प्रदान करने के गुण होते हैं। एक प्याला खौलते हुए पानी में उपरोक्त बूटियों में से किसी एक बूटी से तैयार की हुई चाय का एक चम्मच डालना चाहिए, फिर उसमें शहद या शक्कर मिलाकर पीना चाहिए। यह चाय बाल, वृद्ध एवं युवा सभी के लिए गुणकारी है।

पुंसत्व और रक्त-परिभ्रमण

पुंसत्व और जरावस्था दोनों में निकट का सम्बन्ध है। जब पुरुषों में वीर्य तथा स्त्रियों में रज की उत्पत्ति क्रमशः कम होने लगती है तो जरावस्था का प्रवेश आरम्भ हो जाता है। इसका कारण यह है कि वीर्य तथा रज की उत्पत्ति पोष-ग्रन्थि (Pituitary Gland), तृतीय नेत्र

ग्रन्थि (Pineal Gland), गल-ग्रन्थि (Thyroid Gland), उपगल-ग्रन्थि (Para Thyroid Gland) तथा मनुष्यों में प्रजनन-ग्रन्थि (Gonad) और स्त्रियों में अण्डाशय (Ovary) के संयुक्त रूप में काम करने से होती है। मनुष्य-शरीर को मिलने वाला भोजन यदि अप्राकृतिक और अपमिश्रित (Adulterated) होगा तो शरीर समय से पूर्व ही जरावस्था को प्राप्त हो जायगा। इस प्रकार के भोजन में शरीर के लिए आवश्यक पोषक तत्त्वों का अभाव होता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक मनुष्यों के रहन-सहन के अप्राकृतिक ढंग, व्यायाम करने की आदत का न होना, चलते, बैठते तथा सोते समय शरीर को सीधा न रखने के कारण भी जरावस्था का प्रवेश शरीर में समय से पूर्व ही होने लगता है।

शरीर के पोषण के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थियाँ शरीर के उस भाग में हैं जिसे हम सिर कहते हैं। यदि शरीर को पहुँचने वाले रक्त की मात्रा अपर्याप्त है अथवा रक्त अशुद्ध है तो इसका इन ग्रन्थियों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। अतः शरीर के सिर भाग में स्थित इन ग्रन्थियों को पर्याप्त मात्रा में शुद्ध रक्त मिलना ही चाहिए। इन ग्रन्थियों को शुद्ध रक्त पहुँचाने के लिए इस प्रकार के व्यायाम की आवश्यकता है जिसमें शरीर पृथ्वी पर सीधा फैला हो और सिर हृदय से कुछ नीचा हो। क्या आप जानते हैं कि इस व्यायाम का क्या महत्त्व है और शरीर को इससे किस प्रकार नवयौवन प्राप्त होता है ?

प्रायः यह देखा गया है कि कुछ जानवर तथा पक्षी, जिनकी आयु ढाई सौ वर्ष तक होती है, जैसे गृद्ध तथा वे, जिनकी आयु छ सौ वर्ष तक होती है, जैसे कछुआ, हाथी इत्यादि, भी दीर्घजीवी पशुओं की श्रेणी में आते हैं। ये सभी पशु अधिकांश समय अपने शरीर को हृदय से नीचा रखते हैं। शरीर जब इस प्रकार की स्थिति में होता है तो सिर में स्थित विभिन्न अवयवों तथा अप्रणाल-ग्रन्थियों (Ductless Glands) को निरन्तर पर्याप्त मात्रा में रक्त मिलता रहता है। इसके अतिरिक्त

उदरस्थ अवयव भी पीछे हटकर अपनी सामान्य स्थिति में आ जाते हैं। शरीर की यह स्थिति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि जब मनुष्य सीधा खड़ा होकर चलता है तो भूम्याकर्षण (Gravity) के कारण उसका आमाशय, आंतें तथा अन्य उदरस्थ अवयव कुछ नीचे खिंच आते हैं। ३०-३५ अथवा ४० वर्ष की आयु का कोई मनुष्य जब सीधा खड़ा होता है तो भूम्याकर्षण के कारण उसके उदरस्थ समस्त अवयव कुछ आगे की ओर सरक आते हैं, यद्यपि भूम्याकर्षण की मात्रा लोगों की अलग-अलग शारीरिक शक्ति तथा उनके रहन-सहन के ढंग के कारण कम या अधिक हो सकती है। आमाशय, वृहदन्त्र तथा अन्य अवयवों के आगे की ओर सरक आने को रोकने तथा जरावस्था को दूर रखने का सबसे अच्छा उपाय शरीर की वह स्थिति है जिसमें सिर बाकी शरीर से नीचे स्थान पर रहता है।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि प्राचीन ग्रीस देश के 'मराठन' दौड़ दौड़ने वाले तथा अन्य खिलाड़ी, जिनके धैर्य तथा वीरत्व को देखकर संसार चकित होता था, लेटकर आराम करते समय अपनी टाँगों को उठाकर किसी पेड़ के तने के साथ लगाए रहते थे। शरीर को उठाकर इस स्थिति में रखने से उदर में रुका हुआ रक्त सिर की ओर प्रवाहित होने लगता है और अन्तरासर्गी ग्रन्थियों (Endocrine Glands) का पोषण करके सिर के रुधिर-प्रवाह को नियमित करता है। इस प्रकार का अभ्यास करते रहने के कारण उन खिलाड़ियों के उदरस्थ अवयवों पर भूम्याकर्षण के दबाव से पड़ने वाले प्रभाव का निराकरण तो होता ही था, साथ ही उदर में एकत्रित हुआ रक्त लौटकर शरीर के ऊपरी भागों की ओर प्रवाहित होता था और उदर तथा सिर के स्थानों से जहरीले तत्त्व बाहर निकल जाते थे।

आज से कुछ वर्ष पूर्व डॉ० डोनाल्ड लेयर्ड ने अपने मन्तव्य की लिए कालगेट यूनीवर्सिटी में कई प्रयोग किये थे। उन्होंने इस पता लगाया है कि जब सिर शेष शरीर से नीचा होता है तो

मनुष्य के मस्तिष्क की गति सामान्य अवस्था से ७% और उसकी यथार्थता (Accuracy) १४% बढ़ जाती है।

पुनर्यौवन-प्राप्ति की इस क्रिया को प्रातः-सायं एक ढालू स्थिति में रखे हुए लकड़ी के तख्ते की सहायता से करना चाहिए। इसके लिए ६३ फीट लम्बा लकड़ी का एक तख्ता होता है, जिसके ऊपर कपड़े की गद्दी उसी नाप की मढ़ी होती है, जिससे कि अभ्यास करने वाला सुखपूर्वक उस पर लेट सके। इस तख्ते का एक सिरा पृथ्वी पर होता है और दूसरे सिरे को किसी अन्य तख्ते पर टिकाकर पृथ्वी से इतना ऊँचा कर दिया जाता है कि तख्ता पृथ्वी-तल से २५° या ३०° का कोण बनाता उठा होता है। तख्ते के ऊँचे वाले सिरे पर चमड़े या कपड़े का एक तस्मा लगा होता है, जिसमें अभ्यास करते समय अभ्यास करने वाला अपने पैरों को फंसा सकता है। पैरों को फँसाने से वह सिर की ओर खिसकने से बच सकता है। तख्ते के दोनों ओर सहारे के लिए पकड़ने को दो दस्ते लगे होते हैं, इनको पकड़कर साधक अपने शरीर को तख्ते पर ठीक प्रकार स्थिर रख सकता है। साधक तख्ते पर लेट जाता है। पहले वह थोड़ी देर के लिए शरीर को ढीला छोड़ देता है, फिर कुछ लम्बे-लम्बे गहरे साँस लेता है। फिर वह अपने पेट की इस प्रकार मालिश करता है कि उसका हाथ पेट पर बाईं ओर से दाईं ओर चक्राकार गति से घूमता है। ऐसा करने से उसके उदरस्थ सभी अवयव अपनी सामान्य स्थिति में आ जाते हैं। इन प्रारम्भिक तैयारियों के पश्चात् वह अपने पैरों को आकाश की ओर सीधा खड़ा करता है। घुटनों को बिना मोड़े वह अपने पैरों को उठाता हुआ सिर के पीछे के भाग में ले जाता है यहाँ तक कि पैर पृथ्वी को छू जाते हैं। इस अभ्यास की सफलता साधक की शारीरिक शक्ति तथा शरीर के लचीलेपन पर निर्भर करती है। साधक को चाहिए कि इस अभ्यास को उस समय तक बार-बार करता रहे जब तक उसे थकान अनुभव न होने लगे। इस प्रकार के छोटे-छोटे व्यायाम इस ढालू तख्ते की सहायता से करने से

साधक को बड़ा लाभ होता है। रक्तचाप से पीड़ित मनुष्य को तब तक इस व्यायाम को नहीं करना चाहिए, जब तक वह इस पुस्तक में वर्णित प्राकृतिक उपायों तथा उचित आहार द्वारा रोग को नियन्त्रण में न कर ले।

पुनर्यौवन-प्राप्ति का एक और उपाय यह भी है कि सोते समय तकिया लगाने की आदत को छोड़ा जाए और चारपाई को पैरों की ओर से लकड़ी के टुकड़ों के सहारे प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा ऊँचा उठाते रहें, यहाँ तक कि पैरों की ओर का भाग लगभग ६" अधिक ऊँचा हो जाय। तकिये की आदत को छोड़ना तथा चारपाई को पैरों की ओर से ऊँचा करते जाने का कार्य धीरे-धीरे होना चाहिए। हम अपने पाठकों को फिर चेतावनी देते हैं कि वायु लेने तथा उपरोक्त सोने के समय चारपाई वाला अभ्यास तभी करना उचित है जब कि साधक ने अपने आहार को प्राकृतिक नियमों के अनुसार नियमित करके अपने रक्त को शुद्ध कर लिया हो, और कॉफी, चाय, तम्बाकू एवं मदिरा का प्रयोग बन्द कर दिया हो। साधक को धीरे-धीरे स्वयं अनुभव हो जायगा कि प्रतिदिन वह चारपाई के पैरों की ओर वाले पायों को कितना ऊँचा करता जाय। यदि प्रातःकाल उठने पर उसका शरीर हल्का प्रतीत हो तो समझना चाहिए कि उसका अभ्यास ठीक चलता रहा है।

श्वास द्वारा आरोग्यता-प्राप्ति

मानव-शरीर का पोषण मुख मार्ग से ग्रहण किये गए खाद्य एवं पेय पदार्थों तथा नासिका और रोम-कूपों के मार्ग से ग्रहण की गई वायु द्वारा होता है। मनुष्य बिना भोजन के चालीस दिन, बिना पानी के केवल कुछ दिन, परन्तु बिना हवा के तो कुछ मिनट ही जीवित रह सकता है। अतः श्वास द्वारा शुद्ध वायु का ग्रहण करना ही शरीर के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

साधारण मनुष्य तीन प्रकार से श्वास लेते हैं। प्रथम वे लोग जं

ऊँचा श्वास लेते हैं और इस प्रकार प्रत्येक श्वास के साथ अपने फेफड़ों के केवल ऊपरी भाग में ही वायु का प्रवेश करा पाते हैं। दूसरे वे लोग जो प्रथम कोटि वालों से कुछ गहरा श्वास लेते हैं और उनका श्वास उनके फेफड़ों के मध्य भाग तक पहुँचता है। तीसरी कोटि के लोग अपने फेफड़ों के केवल निचले भाग में ही वायु-प्रवेश करा पाते हैं। उपरोक्त तीनों ही प्रकार के मनुष्यों का श्वास लेने का ढंग गलत है, क्योंकि इस प्रकार केवल फेफड़ों के सीमित भाग में ही वायु का प्रवेश हो पाता है। इन तीनों प्रकारों का सामंजस्य ही श्वास लेने का वास्तविक एवं प्राकृतिक प्रकार है।

प्रत्येक बार श्वास लेने पर फेफड़े पूरी तरह फैल जाने चाहिए और प्रत्येक श्वास छोड़ने पर उनमें भरी हुई समस्त वायु बाहर निकल जानी चाहिए। जानवरों में प्राकृतिक नियमों के अनुसार उचित ढंग से श्वास लेने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। नवजात शिशु तथा छोटे बच्चे भी उचित प्रकार से श्वास लेते हैं। किन्तु मनुष्य का मस्तिष्क जितना विकसित होता जायगा और उसका अपने शरीर पर जितना ही अधिक नियन्त्रण होता जायगा, उसमें सहज एवं स्वाभाविक प्रवृत्ति की उतनी ही कमी होती जायगी। मनुष्य-शरीर प्रकृति का ही एक अंश है, इस-लिए उसे प्राकृतिक नियमों के पालन करने की आदत डालनी चाहिए। स्वास्थ्य प्राणी के शरीर की प्राकृतिक अवस्था का नाम है। अतः प्राकृतिक नियमों के जान-बूझकर उल्लंघन से मनुष्य कष्टों एवं विपत्तियों में फँस जाता है।

स्वास्थ्य के लिए शुद्ध रक्त और शुद्ध रक्त के लिए शुद्ध वायु की आवश्यकता है। शरीर में रक्त के परिभ्रमण का कार्य श्वास द्वारा ही होता है। इसी तथ्य को दृष्टि में रखकर कई प्रकार के श्वास-व्यायामों की उत्पत्ति हुई है। प्राण-वायु के नियन्त्रण का यह रहस्यमय ज्ञान स्वास्थ्य-प्राप्ति तथा आध्यात्मिक चेतना के लिए बड़ा ही आवश्यक है। जिस प्रकार सिंचाई के कुओं में पानी को आगे फेंकने का कार्य वाल्व

द्वारा किया जाता है, ठीक वही स्थान रक्त-परिभ्रमण में हृदय का है। प्रत्येक श्वास के साथ शरीर में जिस जीवन-शक्ति का प्रवेश होता है, उसी जीवन-शक्ति से हृदय को गति मिलती है। श्वास-क्रिया के इस ज्ञान में ही मनुष्यों के घातक शत्रु जरावस्था के नाश का वास्तविक रहस्य निहित है।

जीवन-शक्ति

प्रकृति के समस्त स्थूल पदार्थों में एक रहस्यमयी अद्भुत शक्ति व्याप्त है। यह जीवन-शक्ति ही प्राणियों को जीवन प्रदान करती है। जीवनदायिनी विश्व-जीवन-शक्ति को, जो हम सभी प्राणियों में ओत-प्रोत है, हम प्राण के नाम से सम्बोधित करते हैं। प्राणियों में विकास की मात्रानुसार इसकी मात्रा भी कम या अधिक होती है।

स्थूल शरीर के सात भाग होते हैं—(१) ठोस, (२) तरल, (३) वायव्य तथा चार प्रकार के दक्षु (Ether) सम्बन्धी भाग, यथा (१) रासायनिक दक्षु (Chemical), (२) जीवन-दक्षु (Life), (३) प्रकाश-दक्षु (Light) और (४) परावर्ती दक्षु (Reflecting)। इन चारो प्रकार के दक्षवांगों (Etheric Parts) से मिलकर ही मनुष्य का अदृश्य दक्षु-शरीर (Etheric Body) बनता है। विश्व-जीवन-शक्ति उपरोक्त चार दक्षुओं के माध्यम से ही शरीर में प्रवाहित रहती है और स्थूल शरीर के प्रथम तीनों भागों का अस्तित्व भी इन्ही चारो पर निर्भर है। ये ही चारो भाग प्रथम तीन भागो को गति तथा जीवन प्रदान करते हैं। प्राणियों का स्वास्थ्य तथा उनकी शक्ति इस विश्व-जीवन-शक्ति के परिमाण एवं इसकी उत्कृष्टता पर आधारित है।

उपरोक्त चारो दक्षुओं का शरीर में अलग-अलग कार्य-क्षेत्र है। रासायनिक दक्षु में विश्व-जीवन-शक्ति के प्रवाह के कारण ही शरीर में [illegible] (Assimilation) एवं मल-त्याग (Excretion) की क्रियाएँ [illegible]। यही जीवन-शक्ति जीवन-दक्षु में प्रवाहित होकर शिथिल,

जर्जरित शरीर-कोषों का पुनर्नवन एवं विकास करती है। प्रकाश-दश्मु में जीवन-शक्ति के प्रवाह से ही ज्ञानेन्द्रियों की क्रिया सम्भव होती है और मस्तिष्क के कोषों में स्थित परावर्ती-दश्मु में प्रवाहित होकर यह जीवन-शक्ति स्मरण-शक्ति की स्थिरता तथा उसके परिवर्द्धन का कारण बनती है।

इन तथ्यों से, जिनका ज्ञान सभी अध्यात्मवादियों को होता है, आप भली प्रकार अनुमान लगा सकते हैं कि रहने के कमरों में शुद्ध वायु-प्रवेश के साधनों का अभाव तथा श्वास-क्रिया के समुचित ज्ञान की कमी के कारण ही अधिकांश आधुनिक रोगों की उत्पत्ति हुई है। अपने अज्ञान के कारण ही हम इन रोगों की चिकित्सा के लिए औषधियों तथा इन्जेक्शनों का प्रयोग करते हैं, जिनसे वास्तविक लाभ नहीं होता। इसके स्थान पर यदि हम उचित प्रकार से श्वास लेने की आदत डालें तथा प्राकृतिक नियमों के अनुसार अपने जीवन को संयमित करें, तो प्रकृति स्वयं हमारे शरीर में जीवन-शक्ति के उचित सन्तुलन द्वारा, अप्राकृतिक जीवन तथा अनुचित श्वास-क्रिया के कारण उत्पन्न समस्त रोगों का नाश कर सकती है।

महान् रहस्य

यह विश्व-जीवन-शक्ति, जो हमारे शरीर में तथा हमारे चारों ओर समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, हमारे स्वास्थ्य के लिए उस समय और भी अधिक लाभप्रद सिद्ध होती है, जब हम उचित प्रकार से श्वास लेते हुए अपने मन में मनोवाञ्छित स्वास्थ्य की कल्पना भी करते हैं और साथ ही उसके लिए आतुर कामना भी। कल्पना-चित्र यदि एक बार हमारे अर्द्धचेतन मन पटल पर स्पष्टतया अंकित हो जायगा तो स्थूल शरीर में भी यह कार्यरूप में परिणत होने लगेगा और साधक ने अपनी जिस कामना की पूर्ति के लिए परम पिता परमात्मा से प्रार्थना की थी वह अवश्य पूर्ण होगी। स्वास्थ्य, शक्ति, दीर्घजीवन तथा सुख की प्राप्ति का

यह महान् रहस्य, जिसे मनुष्य ने अपने आधुनिक जटिल तथा यान्त्रिक जीवन के कारण पूर्णतया भुला दिया है, इन्हीं उपरोक्त क्रियाओं में निहित है, वस्तुत. इस प्राकृतिक नियम की अवहेलना के कारण ही आज का मानव इतना दुखी है।

वास्तविक शक्ति हमें भोजन से नहीं प्राप्त होती। भोजन केवल हमारे शरीर-कोशों के पुनर्स्थापन एव पुनर्नवन में सहायक है। जिस प्रकार किसी मकान की क्षतिग्रस्त दीवारों के छेदों को बन्द करने के लिए ईंटों अथवा पत्थरों का उपयोग किया जाता है, ठीक वही उपयोग भोजन का हमारे शरीर के लिए है। वह जीवन-शक्ति, जो हमारी चेतन आत्मा के मन पर नियन्त्रण द्वारा शरीर में गति का संचार करती है, हमें प्राण वायु से प्राप्त होती है।

यदि हमारा भोजन अच्छा होगा और भोज्य पदार्थों में समुचित अनुपात होगा तो हमारे शरीर-कोश भी स्वस्थ होंगे और इसके परिणामस्वरूप हम इन शरीर-कोशों में अधिक और शुद्ध जीवन-शक्ति का सचय करने में समर्थ होंगे। इससे यह स्पष्ट है कि ऐसी अवस्था में ही हमारे शरीर और मन बलवान् बन सकते हैं और हम अधिक शारीरिक एव मानसिक कार्य कर सकते हैं।

मनुष्य जल रखने के लिए लकड़ी के पीपों का प्रयोग करता है और ओषजन तथा अन्य शक्तिशाली गैसों के सुरक्षित सचय के लिए इस्पात के सिलेण्डरों का। प्रत्येक प्राकृतिक शक्ति के संचय के लिए तदनुसार पात्र की आवश्यकता होती है। प्रकृति के इस नियम की अवहेलना यदि कोई करता है तो उसे इसका दण्ड भुगतना ही पड़ता है।

मानव ! तेरे जीवन का यह एक महान् रहस्य है। अब यह तेरा कर्तव्य है कि तू अपने जीवन के ध्येय की प्राप्ति के लिए, अपनी बुद्धि से काम लेकर श्रेष्ठतम विश्व-जीवन-शक्ति संचय के निमित्त अपने [illegible]ीर रूपी पात्र को तदनुसार दृढ़ बनाये। जितना ही बलवान और सुन्दर तेरा शरीर होगा, उतनी ही श्रेष्ठ आत्मा, जो उस दिव्य परमात्म

शक्ति का ही एक स्फुलिंग है, उसमें निवास करेगा।

वस्तुत यह आत्मा ही वास्तविक पुरुष है और उस दिव्य परमात्म ज्योति का एक स्फुलिंग है, जो तेरी और तेरे साथियों की भलाई के लिए तेरे शरीर के माध्यम से प्रकट होती है "उस चेतन-प्रभु के मन्दिर तेरे ही लिए हैं" (कोरिन्थियन्स ६.१६)।

श्वास का रहस्य

श्वास क्या है ? परम विद्वान् वेबस्टर के अनुसार "सांस लेने तथा छोड़ने में जिस वायु का प्रयोग होता है वही श्वास है।" श्वास शब्द का पर्यायवाची ग्रीक शब्द 'ईस्पनो' (Eispnoe) है जो दो शब्दों से मिलकर बना है। 'Eis' शब्द का अर्थ है भीतर (In, Into) और 'Pnoe' शब्द, जो 'Pneuma' शब्द से बना है, का अर्थ है जीवन, आत्मा (Life, Soul)। अत ईस्पनो शब्द का अर्थ हुआ शरीर में जीवन अर्थात् आत्म-शक्ति का प्रवेश, और वस्तुत प्रत्येक सांस लेने पर यही होता भी है। एक अद्भुत शक्ति समस्त प्रकृति में ओत-प्रोत है। यही शक्ति समस्त प्राणियों के जीवन का मूल है। यह चेतन-विश्व-शक्ति, जो हमारे चारों ओर स्थित समस्त प्राणियों में व्याप्त है, जीवन-शक्ति अथवा प्राण कहलाती है। प्रकृति के प्रत्येक प्राणी में इस विश्व-जीवन-शक्ति की मात्रा उसके अपने विकास की मात्रानुसार ही होती है। यह रहस्यमयी जीवनदायिनी शक्ति, जो समस्त ब्रह्माण्ड में व्याप्त है, ऋण (Negative) तथा धन (Positive) दोनों प्रकार की होती है। इन दोनों प्रकार की शक्तियों के उचित सन्तुलन पर ही प्रकृति के समस्त प्राणियों के जन्म, विकास, ह्रास तथा मृत्यु की व्यवस्था निर्भर है।

धन-शक्ति शरीर में दाहिने नथुने से प्रत्येक श्वास के साथ प्रवेश करती है। तदनन्तर वह क्रमशः मस्तिष्क, मस्तिष्क-पुच्छ तथा मेरुदण्ड के दक्षिण पार्श्व में से होती हुई इसके अन्तिम सिरे तक पहुँचती है। ऋण-शक्ति भी श्वास के साथ बायें नथुने से शरीर में प्रविष्ट होकर

सिस्टम के साथ नाड़ी में पहुँचती है।

जीवन और मृत्यु के द्वार

शरीर के जिस स्थान पर दोनों नासिका-रन्ध्र परस्पर मिलते हैं, वहाँ अति सूक्ष्मदर्शी मस्तिष्क का एक केन्द्र है। यह नाड़ी-केन्द्र श्वास में होने वाले जीवन-शक्ति अर्थात् प्राण के विभिन्न कार्यों के लिए उत्तरदायी है। नाड़ी-केन्द्र का कार्य स्नायु-तन्त्र में स्थित इसके दक्षिण की सहायता से, दोनों प्रकार की जीवन-शक्तियों अर्थात् धन-शक्ति और ऋण-शक्ति को एक-दूसरी से पृथक करना है। प्रत्येक नासिका-रन्ध्र में एक प्रकार का स्पन्दन होता है, जिसके द्वारा दूसरे सदा बन्द होने की क्रिया उत्तरोत्तर नाड़ी-केन्द्र द्वारा चालित होती है। श्वास जिस समय दक्षिण नासिका-रन्ध्र में बहता है, उस समय वाम रन्ध्र बन्द रहता है और जब वाम रन्ध्र में श्वास बहता है तो दक्षिण रन्ध्र बन्द रहता है। श्वास दक्षिण रन्ध्र में बहने के समय धन-शक्ति शरीर में प्रवेश करती है और वाम रन्ध्र में श्वास बहने के समय ऋण-शक्ति शरीर में प्रविष्ट होती है।

धन-शक्तियुक्त श्वास द्वारा मानव-शरीर में सूर्य-ऊर्जा (Solar Energy) का प्रवेश होता है, जिसके कारण शरीर में उष्णता उत्पन्न होती है। ऋण-शक्तियुक्त श्वास द्वारा शरीर को चन्द्र-ऊर्जा (Lunar Energy) प्राप्त होती है, जिसके प्रभाव से शरीर शीतल और शान्त रहता है। स्त्रियों में यह क्रिया पुरुषों के ठीक विपरीत होती है। जब दोनों नासिका-रन्ध्रों में समान रूप से श्वास बहता है, तब धन-शक्ति और ऋण-शक्ति की समान मात्रा शरीर को प्राप्त होती है। इसी अवस्था के कारण शरीर में रहस्यमयी जीवन-प्रदायिनी शक्ति का सन्तुलन बना रहता है। मनुष्य जब इस इच्छित अवस्था को प्राप्त कर लेता है तो वह इस प्रज्वलित शक्ति का प्रयोग इच्छानुसार कर सकता है। कोशस सुषुम्ना (Spinal Canal) में प्रवाहित होने वाले मस्तिष्क-मेरु-रस (Cerebro Spinal Fluid) में से होती हुई यह शक्ति आगे बढ़कर मार्ग में पड़ने

करते सातों दाक्षवशक्ति-केन्द्रों अर्थात् चक्रों को विकसित करती है।

साधारण मनुष्य में ये चक्र अविकसित अवस्था में रहते हैं और इनकी शक्ति अकर्मण्य पड़ी रहती है। साधक तथा योगीजन निरन्तर साधना, आत्म-नियन्त्रण तथा प्राकृतिक जीवन-यापन द्वारा इस कष्टसाध्य अवस्था को प्राप्त करते हैं और शक्ति की सहायता से शारीरिक तथा मानसिक चमत्कारों द्वारा अन्य लोगों को प्रभावित कर सकते हैं। प्राचीन नीरोगकर्त्ताओं, दार्शनिकों तथा योगियों में इस प्रकार की शक्ति होती थी। आजकल भी कुछ लोगों में, जिनकी आत्मा पूर्णरूपेण विकसित हो चुकी है, इस प्रकार की शक्ति पाई जाती है। अनेक हिन्दू योगी योगाभ्यास द्वारा इस शक्ति को प्राप्त करते थे और वे २०० वर्ष से भी अधिक समय तक जीवित रहते थे।

यह जीवन-शक्ति मेरुदण्ड में तथा मेरुदण्ड के भीतर स्थित ३१ नाड़ी-युगल में होकर हमारे शरीर में प्रवाहित होती है और इस प्रकार समस्त शरीर में जीवन-शक्ति प्रवेश करती है।

ज्योतिष-ग्रन्थों में वर्णित १२ राशियों के प्रभाव से प्रत्येक १२ घण्टे के पश्चात् श्वास-चक्र बदलता रहता है। एक स्वस्थ मनुष्य के नासिका-रन्ध्रों में बहने वाला श्वास प्रत्येक घण्टे के पश्चात् बदलता रहता है। एक घण्टे तक दक्षिण रन्ध्र में बहने के उपरान्त फिर दूसरे एक घण्टे तक वाम रन्ध्र में बहता है। क्रोध तथा आक्रमणात्मक भावना उपस्थित होने पर श्वास केवल दक्षिण नासिका-रन्ध्र में ही बहता है। श्वास में स्थित इन दोनों प्रकार की प्राण-शक्तियों के समायोजन द्वारा मनुष्य अभीष्ट स्वास्थ्य, प्रसन्नता तथा भावनात्मक एवं मानसिक स्थायित्व की प्राप्ति कर सकता है।

सार्वभौम श्वास द्वारा जीवन-नियन्त्रण

यूनानी दर्शनशास्त्र के पिता तथा प्राचीन सभ्यता के महान् सस्था-पक, पैथागोरस के अनुसार प्रत्येक वस्तु तथा प्राणी में शारीरिक

प्रकम्पनों की संख्या अलग-अलग होती है और उसके मूल प्रकम्पनों कुशलतापूर्वक वश में कर लेने पर ही उस वस्तु अथवा प्राणी का वास्त विक नियन्त्रण सम्भव है। पैथागोरियन सोसायटी की मान्यता है। प्रकम्पनों की यह संख्या समस्त वस्तुओं के प्रकम्पन तथा सभी प्राणियों के श्वास का आधार है। अतएव प्रत्येक वस्तु अथवा प्राणी का प्रकृति में स्थान उसके निजी प्रकम्पनों की संख्या पर और उसके सार्वभौम श्वास के परस्पर सम्बन्ध के अनुसार ही नियत किया जाता है। विश्व-जीवन शक्ति अर्थात् प्रकृति में विद्यमान परमात्म-शक्ति की लयबद्धता का ही दूसरा नाम श्वास है। सार्वभौम श्वास की अनन्त तरंगो के अनुसार ही प्रकृति के समस्त पदार्थों में प्रकम्पन उत्पन्न होता है। जिस प्रकार समुद्र तल पर तैरने वाली प्रत्येक वस्तु समुद्र की तरंगो द्वारा प्रकम्पि होती है, उसी प्रकार सार्वभौम-श्वास-तरंगो के प्रभाव से प्रकृति के प्रत्येक वस्तु में तदनुरूप प्रकम्पन उत्पन्न होता है। वस्तु जितनी छोटी होगी, तरंगों का प्रभाव उस पर उतना ही अधिक होता है और स जितना ही बड़ा और गहरा होगा, तरंगें उतनी ही बड़ी होती हैं।

यही नियम समस्त प्राणियों पर भी लागू होता है। किसी प्राणी का श्वास जितनी तेजी से चलता है, उसकी आयु उतनी ही कम होती है और श्वास जितना धीरे-धीरे चलता है, आयु उसी अनुपात से अधिक होती है। यही कारण है कि श्वास की गति के अनुसार प्राणियों को कई वर्गों में बाँटा जा सकता है। जन्म से एक वर्ष पर्यन्त मनुष्य प्र मिनट १४० श्वास लेता है। २१ वर्ष से ६५ वर्ष की आयु के लोगों प्रति मिनट श्वासो की संख्या घटकर ७५ से ६५ तक रह जाती है और वृद्धावस्था में बढ़कर ८५ तक हो जाती है। इस प्रकार प्रत्येक मनु प्रतिदिन २१,००० अर्थात् प्रति मिनट १५ और हृदय की प्रत्ये चार धड़कनों के समय में एक श्वास लेता है।

दक्षिण नासारन्ध्र में श्वास बहने के समय सूर्य-ऊर्जा शरीर में प्रवेश करके उष्णता उत्पन्न करती है। धन-शक्ति के इस प्रकार शरीर

गहरा श्वास खींचिए। फिर उतने ही समय तक श्वास को भीतर रोके रहिए। ऐसा करते समय नासारन्ध्रों को अँगूठे तथा उंगलियों से बन्द क लेना चाहिए। तदुपरान्त रुके हुए श्वास को हृदय की सात धड़कनों क समयावधि में बाहर निकाल दीजिए। अब उपरोक्त क्रिया को दक्षि नासारन्ध्र से आरम्भ करके वाम रन्ध्र पर समाप्त कीजिए। बारी बारी दोनों नासारन्ध्रों से श्वास लेने की इस क्रिया को कई बा दुहराइए। इस क्रिया को करते समय बीच में विश्राम नहीं लेन चाहिए। धीरे-धीरे अभ्यास द्वारा यह क्रिया ८ : ८ ८, ९ : ९ : ९ तथा १० : १० : १० की गणना तक बढ़ सकती है। परन्तु ऐसा करना अभ्यासी के फेफड़ों की शक्ति पर निर्भर करता है।
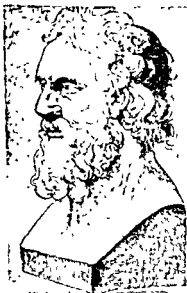
महान् दार्शनिक प्लेटो प्राकृतवाद तथा प्राकृतिक जीवन में अखण्ड विश्वास रखते थे।

३

चिर-यौवन

महान् दार्शनिक प्लेटो के कथनानुसार, "जिस प्रकार हमारा शरीर इस विराट् विश्व-शरीर का ही एक भाग है, उसी प्रकार हमारी आत्मा भी समस्त विश्व में व्याप्त अनन्त परमात्म-शक्ति का ही एक अंश है।" अतः यूनानी दर्शन-साहित्यानुसार मनुष्य आत्मा और शरीर इन दो तत्वों के योग से बना है, इसलिए मनुष्य का सम्बन्ध आत्मा के नाते पिता रूप परमात्मा से तथा स्थूल शरीर के नाते जननी रूपी प्रकृति से स्थापित हो जाता है। यही कारण है कि प्राकृतिक नियमों का पालन मनुष्य का परम कर्तव्य हो जाता है।

जब तक मनुष्य प्राकृतिक नियमों का पालन करता रहता है, तब तक विश्व-जीवन-शक्ति से उसका सामंजस्य बना रहता है और इसके परिणामस्वरूप वह सदैव स्वस्थ, प्रसन्न-चित्त तथा बलवान बना रहता है। प्राकृतिक नियमों के पालन से ही उसे चिर-यौवन तथा दीर्घ-जीवन की प्राप्ति होती है, और प्रत्येक दृष्टि से उसका जीवन एक सफल जीवन बनता है। परन्तु प्राकृतिक नियमों के उल्लंघन का परिणाम इसके विपरीत होता है। शरीर के प्रति मनुष्य का कर्तव्य है कि वह उसे उचित आहार प्रदान करे और अपनी आत्म-शक्ति द्वारा पूर्ण अनुशासन में रखे।

स्वभावतः मनुष्य आलसी होता है और किसी भी प्रकार के श
रिक अनुशासन के प्रति विद्रोह करने को तत्पर रहता है। मनुष्य
सबसे बड़ा शत्रु उसका मन है। माया अर्थात् छलना मन का एक विशि
गुण है। मन अपनी माया के जाल में मनुष्य को आसानी से फँसा लेत
है। आत्मा के अनुशासन से बचने के लिए वह अनेक प्रकार के बहानों
अथवा चालाकियों का सहारा लेता है तथा मनुष्य को कर्म-विमुख
करके आलसी बनने के लिए उकसाया करता है। वस्तुतः कर्म के ही द्वारा
मनुष्य में अनुशासन एवं आत्म-नियन्त्रण की भावना उत्पन्न होती है

"कर्म तथा अनुशासन के दुर्गम मार्ग पर चलते-चलते अनेक मनु
सफलता के शिखर से लुढ़क भी जाते हैं। उन्नति, सफलता एवं आकाक्ष
की सीढ़ी पर चढ़ने से पूर्व मनुष्य को कर्म तथा अनुशासन पर विजय
प्राप्त करना आवश्यक है।"

यह एक प्रसिद्ध सार्वभौम सिद्धान्त है कि प्रकृति की प्रत्येक व
अपने अदृश्य प्रतिरूप के गुणों तथा लक्षणों के अनुरूप, अपने लिए क
करती रहती है। जड़ता (Inertia) जड़ पदार्थों और शरीर तथा
विभिन्न शारीरिक अवयवों का स्वाभाविक गुण है। अधिक काल तक
निरन्तर अकर्मण्य बने रहने पर शारीरिक तत्त्वों में प्रकम्पन की गति
मन्द होने लगती है और धीरे-धीरे उन पर आत्मा का नियंत्रण शिथिल
होने लगता है। इस प्रकार समस्त शारीरिक तत्त्व एक-दूसरे से अलग
होकर पुन. ब्रह्माण्ड के उन्हीं पाँच मूल तत्त्वों में विलीन हो जाते हैं
जहाँ से आत्मा ने शरीर-धारण के समय उसका संचय किया था।

इसी प्रकार भावना-शरीर का एक स्वाभाविक गुण यह है कि वह
सदैव ही भावना से युक्त रहे तथा भावनाओं से प्रेरित होकर कर्म
करता रहे। यदि हमारी आत्मा हमारे इस भावना-शरीर के पोषण
शुद्ध भावनाएँ प्रदान करने में असफल रहती है तो हमारा भावना-शरीर
निरर्थक, भद्दी तथा दुष्ट इच्छाओं एवं भावनाओं को ग्रहण करने लगता
है, जो अपने निम्नतर प्रकम्पन के कारण भावना-शरीर को सहज —

करती और आकृष्ट कर लेती है और इस प्रकार, जैसा कि हमारे आधुनिक समाज में प्राय देखने को मिलता है, स्त्रियों तथा पुरुषों की भावनाएँ विकृत होकर पैशाची बन जाती हैं।

मनुष्य के मन-शरीर पर भी यही नियम लागू होता है। वास्तविक ज्ञान, अभ्यास तथा स्थूल शरीर पर अनुशासन एवं नियंत्रण के कारण एक दार्शनिक अपने विचारों में सामंजस्य स्थापित करके अपनी शारीरिक क्रियाओं की प्रवृत्तियों को नियमित रखता है और अपने मनः-शरीर में निहित विभिन्न शक्तियों में परस्पर संतुलन बनाये रखता है। यही कारण है कि वह जीवन-भर स्वस्थ, बलवान तथा शान्त रह सकता है।

मनुष्य-शरीर की तुलना एक रेडियो से की जा सकती है। ट्यूब, तार तथा अन्य पुर्जों से मिलकर यह मशीन बनती है। ट्यूब तथा तार न तो बहुत बड़े ही होते हैं और न बहुत छोटे ही, वरन् उनके आकार में एक उचित अनुपात होता है। इससे रेडियो के समस्त पुर्जों की क्रियाओं में एकरूपता आती है और इस प्रकार रेडियो से प्रोग्राम सुने जा सकते हैं। जिस प्रकार रेडियो से सुने जाने वाले गीत, भाषण, समाचार तथा उपदेश आदि का कारण रेडियो मशीन न होकर एक बाह्य तथा दूरस्थ रेडियो स्टेशन होता है, उसी प्रकार मनुष्य के स्वास्थ्य, यौवन, शक्ति, सफलता तथा सुख का कारण उसकी आत्मा द्वारा रचित आध्यात्मिक सार्वभौम प्रकम्पन है। आत्मा अपना कार्य सुचारु रूप से तभी कर सकता है जब उसके चारों पार्थिव शरीरों में एकरूपता हो तथा वे पूर्णतया आत्मा के नियन्त्रण में हों। "विकास, प्रेरणा एवं ज्ञान का स्रोत मनुष्य के हृदय में है, बाहर कहीं नहीं।"

उपरोक्त तथ्यों से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि आजकल अधिकांश लोगों की रुग्णता, उनके कष्ट तथा माया-बन्धन का कारण क्या है। वस्तुतः उनका अपने शरीर पर नियन्त्रण नहीं है। ऐसे मनुष्य नाममात्र को जीवित अवश्य हैं, परन्तु वे उस अद्भुत

आत्मिक प्रकम्पन से अपना सम्बन्ध स्थापित नही कर सके हैं, जो इस अखण्ड ब्रह्माण्ड की रचना का एकमात्र कारण है और विश्व में विद्यमान समस्त जीवन, साध्वनिकता, सौन्दर्य तथा शान्ति का आदि स्रोत है।

मनुष्य के लिए यह जान लेना आवश्यक है कि वह स्वयं स्थूल शरीर, ईथरीय शरीर, भावना-शरीर तथा मनःशरीर इन, चारों पार्थिव शरीरों में व्याप्त होकर कार्य करने वाला आत्मा है। अतः उसे चाहिए कि इन शरीरो का समुचित पोषण करे, विकास करे और फिर उन पर नियन्त्रण रखे। बाल्यावस्था में हमारे माता-पिता तथा गुरुजन हमारे इन शरीरो के पोषण में हमारी सहायता करते हैं। जब ये शरीर पूर्णरूपेण विकसित हो जाते हैं तो आत्मा के नियन्त्रण तथा मार्ग-दर्शन में हम इनका कुशल सचालन कर सकते हैं। केवल तभी ये शरीर हमारे लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं। इनकी अनुकूलता पर ही हमारे जीवन की सभी क्रियाएँ ठीक और सतोषजनक होती हैं।

वास्तव में ऐसा मनुष्य, जो अपने खाने-पीने में नियमित नहीं होता और तम्बाकू आदि हानिकारक पदार्थों का सेवन करता है, उसके ये चारों शरीर उसके लिए कदापि उपयोगी सिद्ध नही हो सकते।

दर्शन-साहित्यानुसार मनुष्य-शरीर अट्ठाईस वर्ष की आयु में पूर्ण विकास को प्राप्त करता है और इस अवस्था से पहले प्रकृति हमारी कुप्रवृत्तियो एव बुराइयों को दूर करने के लिए संघर्ष करती हुई हमारे शरीरो की रक्षा करती रहती है। अट्ठाईस वर्ष की अवस्था होने पर प्रकृति अपने इस उत्तरदायित्व को स्वय मनुष्य पर ही छोड देती है। यदि मनुष्य में ज्ञान तथा इच्छा-शक्ति है तो वह जीवित रहने के लिए किये जाने वाले सघर्ष में विजयी होकर अपनी इच्छानुसार सुदीर्घ काल तक जीवित रह सकेगा। परन्तु यदि उसमें ज्ञान का अभाव है और उसकी इच्छा-शक्ति अस्थिर है तो इस अवस्था के उपरान्त अनेक प्रकार के रोग उसे घेर लेंगे और उसका जीवन कष्टपूर्ण बनकर भार बन

कोशों में प्रवाहित होकर शरीर को बल प्रदान करती है। इस शक्ति को धारण करने वाले शरीर-कोश जितने ही सजीले, स्वस्थ एवं निर्मल होंगे, उतनी ही अधिक तथा उच्चकोटि की प्रोजस्-शक्ति को वे ग्रहण तथा धारण कर सकेंगे, और शरीर-कोशों की इस क्षमता के कारण शरीर को स्वास्थ्य, बल तथा स्फूर्ति की प्राप्ति होती है। परन्तु शरीर को इस सामान्य तथा प्राकृतिक अवस्था में रखने के लिए उत्तम भोजन, भोजन में उचित खाद्य तत्वों के उचित अनुपात तथा उसमें विटामिन और प्रांगारिक खनिज तत्वों की उचित मात्रा का होना परमावश्यक है।

(३) भावना-शरीर—यह शरीर एक अत्यन्त सूक्ष्म तत्व से बना है, जो उपरोक्त दोनों शरीरों में रमा हुआ है। भावना-शरीर का सम्बन्ध भावनाओं से है। स्वस्थ भावनाएँ इस शरीर में तीव्र प्रकम्पन उत्पन्न करती हैं। नीच और विकृत भावनाओं से शारीरिक प्रकम्पन में उसी अनुपात से कमी आ जाती है। इस शरीर की स्वाभाविक प्रवृत्ति प्रकम्पन को मन्द करने की ओर है। यदि वास्तविक ज्ञान तथा दृढ़ इच्छा-शक्ति के अभाव में, मनुष्य इस शरीर के पोषणार्थ स्वस्थ और उच्च भावनाओं का प्रबन्ध नहीं कर सकता, तो यह शरीर अपने चारों ओर के वातावरण से अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार निकृष्टतम, भद्दी तथा अपवित्र भावनाओं को ग्रहण कर लेता है और इस प्रकार उसमें प्रकम्पन की गति अत्यन्त मन्द पड़ जाती है।

(४) मन शरीर—पार्थिव शरीरों में यह शरीर सूक्ष्मतम होने के कारण, नाशवान स्थूल शरीर तथा अमर आत्मा को सम्बद्ध करने वाली एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। यह शरीर जिस मूल तत्त्व से बना है वह उपरोक्त तीनों शरीरों में ही रमा हुआ है। इसलिए इस शरीर [illegible] प्रत्येक क्रिया का उपरोक्त तीनों शरीरों पर व्यापक प्रभाव पड़ता [illegible]। भावना-शरीर की भाँति इस शरीर में भी निरन्तर प्रकम्पन की [illegible] होती रहती है। प्रकम्पन तथा गति ही इस शरीर का स्वाभाविक

हुआ है। यदि आत्मा अपनी किसी कमज़ोरी तथा अवहेलना के कारण इस महत्त्वपूर्ण शरीर में, उच्च विचारों द्वारा तीव्र कम्पन उत्पन्न नहीं कर सकता तो यह शरीर अपने निकटतम वातावरण के अधम तथा नीच विचारों की ओर आकृष्ट हो जाता है, अथवा अपराधियों, आत्महत्या जैसे जघन्य कर्म करने वाले मनुष्यों तथा अन्य दूषित मनोवृत्ति वाले प्राणियों की दुष्टात्माओं के घृणित तथा नीच विचारों से प्रभावित होता है।

इस प्रकार की स्थिति मनुष्य के लिए बड़ी ही भयावह है। इसके अतिरिक्त, इस प्रकार की दूषित मनोवृत्ति वाले मनुष्य समाज के लिए भी अत्यन्त भयकर सिद्ध हो सकते हैं, क्योंकि उनके मन जान-बूझकर सदा अपनी कमज़ोरी तथा बुरी आदत के कारण अपने चारों ओर रहने वाले अन्य मनुष्यों के मनों पर भी अपने विषैले एवं घातक विचारों से निरन्तर प्रहार करते रहते हैं। इस प्रकार कमजोर तथा असावधान लोग इनसे सहज ही प्रभावित होकर पूर्णतया इनके वशीभूत हो जाते हैं और उनके जीवन में होने वाले समस्त व्यापार उपरोक्त दुष्ट मनुष्यों द्वारा सचालित होने लगते हैं। युवावस्था के अधिकांश अपराधों का कारण मुख्यतया इस प्रकार का मानसिक नियन्त्रण, अधम विचारधारा तथा पृथ्वी पर रहने वाली अन्य दुष्टात्माओं का प्रभाव ही है।

मनुष्य को चाहिए कि अपनी मानसिक अवस्था तथा अपनी भावनाओं की प्रवृत्ति को सावधानी से देखता रहे और उन्हें युक्तिपूर्वक अपने नियन्त्रण में रखे। इस प्रकार बाइबल के इन उपदेशों का कि "निरन्तर ईश्वरोपासना में लगे रहो" (थेसालोनियन्स १, ५, १७) तथा "मनुष्यों को उचित है कि सदैव ईशाराधन करते रहें, शिथिल न हों" (लूक, १८ १) का सही वैज्ञानिक तथा दार्शनिक अर्थ हमारी समझ में आ जाता है।

आत्मा अपने विकास के परिमाणानुसार तथा उपरोक्त चारों पार्थिव शरीरों पर अपने नियन्त्रण की मात्रानुसार ही इन चारों प्रकार

के शरीरों में प्रकट होता है।

मनुष्य-शरीर यदि स्वस्थ और अनुशासित होगा तो आत्मा उसे अपने नियन्त्रण में रखकर सुगमता से उचित एवं अभीष्ट कार्यों में प्रवृत्त कर सकेगा और इस प्रकार उस मनुष्य की, उसके अपने समाज की तथा देश की भलाई एवं उन्नति होगी। आत्मा अपनी इच्छानुसार किसी भी प्रकार की स्थिति उत्पन्न करके उससे आनन्द प्राप्त करने की कल्पना कर सकता है। आत्मा की शक्ति तथा योग्यता के अनुपात से यह काल्पनिक चित्र मनुष्य के मानस-पट पर अंकित होकर सजीव तथा स्पष्ट विचारों के रूप में प्रकट होता है। इन विचारों को भावनाओं तथा इच्छाओं की पुट देकर, अपने स्वस्थ शरीर तथा जीवन-शक्ति की सहायता से, मनुष्य अपने समाज की भलाई के लिए कार्य रूप में परिणत कर सकता है। इस प्रकार वह समस्त समाज की शारीरिक अवस्था को अपनी कल्पना के अनुसार बदलने में समर्थ हो जाता है।

'समान वस्तुएँ समान वस्तुओं को आकृष्ट करती हैं,' इस नियम के अनुसार अच्छे और रचनात्मक विचार अपने निकटतम वातावरण से अपने समान विचारों को आकृष्ट करते हैं और इस प्रकार मनुष्य की कल्पना साकार होती है। यदि मनुष्य विश्वास तथा उत्साह के साथ अपनी कल्पनाओं को मानस-पट पर स्पष्टतया अंकित करने के लिए तथा अपने हृदय को महान् आकांक्षाओं एवं अदम्य उत्साह से भरने के लिए दृढ़ हो और बुद्धिमत्ता तथा दृढ़ता से अपने कार्य में प्रवृत्त हो तो उसके मार्ग में चाहे कितनी ही बाधाएँ आएँ, चक्रों के नियम के अनु- प्रकृति की समस्त शक्तियाँ इस प्रकार के महत्त्वाकांक्षी पुरुष की कल्पनाओं को मूर्त्त रूप देने में सहायता प्रदान करती हैं। परन्तु उसकी कल्पना की स्पष्टता, भावनाओं की तीव्रता और उसके की महानता पर ही निर्भर करता है। यह एक सार्वभौम नियम कभी गलत सिद्ध नहीं होता। संसार में अवसर, भाग्य अथवा

इनीय नाम की कोई वस्तु नहीं है। केवल यह सार्वभौम नियम ही
नुष्यों की सफलता अथवा असफलता का कारण है।

जिस प्रकार कोई मनुष्य रेडियो सेट के डायल पर अंकित तरंग-
विस्तार (Wave Length) की समस्त दूरी में किसी भी स्थान पर
ई को घुमाकर वायु (Ether) पर अभीष्ट संगीत तथा सूचनाएँ सुन
लेता है, ठीक उसी प्रकार आत्मा भी स्थूल शरीर को सम्वरित करके
स शरीर, ईथरीय शरीर तथा भावना-शरीरों के माध्यम से, प्रकृति
मनुष्य भण्डार में मानव-समुदाय द्वारा संचित ज्ञान से अभीष्ट
नकारी प्राप्त कर सकता है। समस्त शरीरों पर एक ही समान
यम और विधियाँ लागू होती हैं, फिर भी शरीरों की भिन्नता तथा
रों की तीव्रता के परिमाणानुसार परिणाम भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

य का कारण और उसका उपाय

भय मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। भय कई प्रकार के होते हैं,
स सभा-कम्प, लज्जा, शत्रु-भय, चिन्ता तथा हीनंमन्यता आदि। भय
ुष्य की एक विशिष्ट मानसिक अवस्था का नाम है। यह निर्विवाद
य है कि यह मानसिक अवस्था स्थूल शरीर से अचानक जीवन-शक्ति
रिक्त हो जाने के कारण उत्पन्न होती है। ऐसी अवस्था में स्थूल
रीर का अकस्मात् पतन हो जाता है और मन उसके अंगों के नियन्त्रण
ा संचालन में असमर्थ हो जाता है।

जिस प्रकार मोटर गाड़ी के टायर की हवा निकल जाने पर उसमें
ा भरना आवश्यक होता है, उसी प्रकार जीवन-शक्ति के शरीर से
हिर्गमन की क्रिया को रोककर शरीर में इस शक्ति की मात्रा का
ाना तथा शरीर को उसकी पूर्वावस्था में लाना भी मनुष्य के लिए
आवश्यक है।

जीवन में कभी-कभी ऐसी असाधारण परिस्थितियाँ भी आती हैं
आत्मा भयभीत एवं किंकर्तव्यविमूढ़ होकर कुछ समय के लिए

स्थूल शरीर पर अपने नियन्त्रण को गँवा बैठता है। आत्मा की स्वाभाविक प्रवृत्ति ऐसे समय में शरीर को त्यागकर उस अवाञ्छनीय परिस्थिति से बच निकलने की होती है। इसके लिए वह श्वास-क्रिया को बन्द करके शरीर-भण्डार में संचित समस्त जीवन-शक्ति को शरीर से बाहर निकाल देता है। जीवन-शक्ति का केन्द्रीय भण्डार उदर के पीछे तथा उर:प्राचीर (Diaphragm) से नीचे की ओर सूर्य-प्रतान (Solar Plexus) में है।

भय की स्थिति में उर:प्राचीर अपनी सामान्य क्षैतिज स्थिति से हटकर ऊपर उठता है और एक घण्टी की आकृति धारण कर लेता है। इस अचानक परिवर्तन के कारण उदर, आँतें तथा पेट के अन्य अवयव भी ऊपर उठते हैं और सिकुड़े हुए उर प्राचीर के साथ मिलकर सूर्य-प्रतान पर दवाव डालते हैं। इसके साथ ही हृदय-गुहा (Thoracic Cavity) भी सकुचित हो जाती है और तुरन्त ही सूर्य-प्रतान जीवन-शक्ति बाहर निकलने लगती है। हृदय-गुहा के सकुचित होने श्वास-क्रिया में गडवड़ हो जाती है। उर प्राचीर के ऊपर की ओर उठे होने के कारण जीवन-शक्ति का, जो शरीर के समस्त अंगो में वल तथा जीवन का सचार करती है, मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और इसके परिणामस्वरूप शरीर का क्षय होने लगता है, मस्तिष्क भी काम करना बन्द कर देता है और जीवन-शक्ति द्वारा परित्यक्त मनुष्य अत्यन्त असहाय बना रह जाता है।

अब, जबकि हमें अपने भयंकरतम शत्रु के विषय में जानकारी प्राप्त हो गई है, तो हमारे लिए यह आवश्यक है कि जीवन-शक्ति के शरीर से वहिर्गमन को रोकने के लिए हम उर:प्राचीर को पुन. उसकी सामान्य क्षैतिज अवस्था में लाने का प्रयत्न करें। ऐसा करने से सूर्य-प्रतान पर पड़ने वाला दवाव कम हो जायगा। इसलिए हमें भय की स्थिति उत्पन्न होते ही लम्बे-लम्बे श्वास लेने चाहिएँ। ऐसा करने से फेफड़ों के निचले भाग वायु से भर जा गे और पेट नीचे की ओर दव-

चिर-यौवन

ए हुए बाहर की ओर निकल जायगा। फिर उर.प्राचीर तथा पेट
ं इसी दशा में रखकर सामान्य रूप से श्वास लेना चाहिए। ऐसा
रने से सूर्य-प्रतान अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ जायगा और
शारीरिक अंगों में पुनः जीवन-शक्ति का संचार होने लगेगा। इस
विधि द्वारा भय की स्थिति उत्पन्न होने पर मनुष्य अपने मस्तिष्क की
स्वस्थता से उसका समुचित उपाय कर सकता है।

किसी प्रकार का भी भय उपस्थित होने पर उपरोक्त उपाय द्वारा
भय-मुक्ति सम्भव है। सामुद्रिक भय, वायव्य भय, सभाकम्प आदि भय
तथा शरीर में जीवन-शक्ति की कमी के कारण होने वाली गड़बड़ियों
को उपरोक्त विधि से रोका जा सकता है।

इस उपचार को और भी सफल बनाना हो तो तर्जनी तथा मध्य
उँगली के संगम-स्थान की त्वचा को दूसरे हाथ की उँगलियों से मलना
चाहिए। इससे उर.प्राचीर तथा सूर्य-प्रतान पर पड़ने वाला शारी-
रिक अवयवों का दबाव कम हो जायगा और वे अपनी सामान्य अवस्था
में आकर पूर्ववत् कार्य करने लगेंगे। कटिबन्ध चिकित्सा-प्रणाली (Zone
Therapy) में प्रयुक्त होने वाले अनेक उपचारों में से एक उपचार
यह भी है।

चिर-यौवन कैसे प्राप्त करें

इस महत्वपूर्ण लक्ष्य की प्राप्ति का रहस्य, जिसे जानने की सभी
इच्छा करते हैं, समझने में सरल है, किन्तु उसकी कार्य रूप में परि-
णति अत्यन्त कठिन है। प्रत्येक उस मनुष्य को, जिसके मन में यौवन
प्राप्ति की अभिलाषा है, सदैव युवकों की भाँति बात करनी चाहिए,
युवकों की भाँति श्वास लेना चाहिए, युवकों की भाँति कार्य करने
चाहिएँ और युवकों की ही भाँति विचार करना एवं उनके समान ही
उत्साही बनना चाहिए। मनुष्य को चाहिए कि वह प्रत्येक समय
स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों का पालन करे, थोड़ा-बहुत व्यायाम करता

यह होता है कि शारीरिक स्वास्थ्य का ह्रास होने लगता है।

हमारे वर्तमान समाज का चरित्र निरन्तर गिरता जा रहा है। हमारी सभ्यता तथा हमारा सामाजिक जीवन पतनोन्मुख है। यही कारण है कि अधिकांश स्त्री-पुरुषों की प्रजनन-ग्रन्थियाँ प्रायः प्रत्येक समय उत्तेजित अवस्था में रहती हैं। पोष-ग्रन्थि के कार्य में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित होने का परिणाम यह होता है कि मनुष्य शक्ति तथा यौवनविहीन होकर समय से पूर्व ही वृद्ध हो जाते हैं तथा नाना प्रकार के रोग शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं। यही कारण है कि प्रजनन-ग्रन्थियों को संहारक तथा अन्य ग्रन्थियों को रचनात्मक ग्रन्थियाँ कहते हैं।

पोष-ग्रन्थि से सम्बन्धित अन्य ग्रन्थि 'यौवन-लुप्त-ग्रन्थि' अथवा यौवन-ग्रन्थि है। यौवन के प्रारम्भिक काल में यह ग्रन्थि अत्यन्त क्रियाशील होती है। परन्तु इस काल की समाप्ति पर इसकी गति मन्द होने लगती है। इसका आकार घटने लगता है और यौवनावस्था में प्रजनन-ग्रन्थियों की अत्यधिक उत्तेजना के कारण इसका ह्रास आरम्भ हो जाता है। शरीर में इस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होने पर मनुष्य की आयु शीघ्रता से घटने लगती है।

चूहों पर किये गए अनेक प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि उनके शरीर से यौवन-ग्रन्थि यदि निकाल दी जाती है तो वे शीघ्रता से जवान होने लगते हैं और शीघ्र ही बूढ़े होकर अल्पायु में मर जाते हैं। इससे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि यदि कोई मनुष्य यह चाहता है कि उसका यौवन अधिक समय तक स्थायी रहे तथा शरीर में बल, उत्साह, सौन्दर्य एवं सुख की वृद्धि होती रहे तो उसका कर्त्तव्य है कि वह प्रजनन-ग्रन्थियों में होने वाली अस्वाभाविक उत्तेजना को रोके, इन ग्रन्थियों के कार्य को नियमित करके यौवन-लुप्त-ग्रन्थि को सदैव क्रियाशील बनाये रखे। यौवन-लुप्त-ग्रन्थि को क्रियाशील बनाये रखने का तरीका यह है कि मनुष्य नये-नये मित्र बनाये,

अपने कार्यों में सर्वोत्तम लाभ रहें, नई शक्ति उत्पन्न करें, अर्थात् जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका व्यवहार तथा उनकी विचारधारा एक युवक के समान होनी चाहिए।

प्राचीन दार्शनिकों को इन दो रहस्यमयी विरोधी ग्रन्थियों के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त थी। स्वास्थ्य तथा यौवन की रक्षा के लिए और शरीर के विभिन्न अंगों के समुचित संचालन के लिए वे लोग इन ग्रन्थियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखते थे। यही कारण है कि जीवन की अन्तिम घड़ियों तक वे स्वस्थ बने रहते थे। यूनानी तत्ववेत्ता अरस्तू का कहना है कि जीवन को स्वस्थ रखने वाली रसायन उसके शरीर में ही मौजूद है।

प्रिय पाठकगण! हमने आपके समक्ष जीवन-रसायन तथा चिर-यौवन सम्बन्धी सभी तथ्य प्रस्तुत कर दिए हैं। अब इस ज्ञान द्वारा अपने दैनिक जीवन को सुखी बनाना या न बनाना आपका काम है। यदि आप ऐसा कर सके तो आप मृत्यु-पर्यन्त स्वस्थ, सुखी, बलवान् तथा पराक्रमी बने रहेंगे। जिन नियम के पालन से दूसरे मनुष्यों ने अपने जीवन को सुखी बनाया है, उसीका पालन करके आप भी अवश्य ही सुखी बन सकते हैं।